ग्रंथ-संख्या—३७

प्रकाशक तथा विक्रेता

भारती-भण्डार

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

चतुर्थ संस्करण

सं० २००६ वि०

मूल्य १।)

मुद्रक

महादेव एन० जोशी

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्राक्कथन

नाट्य-कला संस्कृत में सैकड़ों वर्ष से प्रचलित है। केवल ग्रीस में कुछ इने-गिने नाट्यकार उस समय में वर्तमान थे। शोकान्त नाटक लिखने में ईस्किलस, सोफौक्लीज़, और यूरिपिडीज़ प्रधान थे और सुखान्त नाटक और प्रहसन के लिखने में ऐरिस्टौफेनीज़ सिद्धहस्त थे। इन्हीं चार-पाँच कवियों की रचनाओं के सहारे अरिस्तू ने नाटक के सिद्धान्तों का निर्णय ऐसे सुचारु रूप से किया कि यूरप में अब भी उनका बड़ा सम्मान है। उनके बताये हुए नियमों का पालन करना कवियों का कर्त्तव्य-सा होगया है। वर्षों तक समालोचक 'नाटक अच्छा है कि नहीं' इस प्रश्न के उत्तर में यही देखा करते थे कि इसमें अरिस्तू के नियमों का पालन हुआ है अथवा नहीं। उनके कुछ नियम तो सर्वदा आदरणीय रहेंगे, क्योंकि उनका सम्बन्ध काव्य के मूल अंगों से है, परन्तु कुछ ऐसे भी नियम हैं, काल के परिवर्तन से अब जिनका पालन हानिकारक और निरर्थक है। वर्त्तमान समय में यूरप में नाट्यकार यदि उच्छृङ्खल नहीं तो स्वतंत्र अवश्य हो गये हैं। नियमों का परिपालन उनके लिए दुष्कर हो गया है। स्वाभिरुचि एकमात्र पथ-प्रदर्शक का काम करती है। इसका फल यह है कि जो लेखक के चित्त की प्रवृत्ति है, उसी का, अविकल रूप में, प्रतिविम्ब नाटक में मिलता है। अरिस्तू के पहले भी यही दशा थी। ईस्किलस के नाटक में हम उसकी आस्तिकता की झलक पाते हैं; सोफौक्लीज़ कभी-कभी घबड़ा जाता है, परन्तु देवता में उसकी श्रद्धा बनी रहती है; यूरिपिडीज़ तो देवताओं को भी मनुष्य के समान

निर्बल और निस्सहाय समझता है। अपने मत को, अपनी प्रकृति को, अपने विश्वासों, आकाँक्षाओं, स्वप्नों को, किसी-न-किसी रूप से ये सभी अपनी कला में स्थान देते थे। भेद केवल इतना है कि ये महाकवि थे और आजकल के स्वेच्छाचारी लेखकों में थोड़े ही कवि की पदवी के योग्य हैं।

संस्कृत का नाट्य-साहित्य किसी और भाषा से कम नहीं है—संख्या में अथवा गुणों में। लेकिन जिस समय में इसका विकास हुआ, उस समय मनुष्य की सबसे प्रधान चिन्ता ईश्वराराधना थी। देवताओं की कृपा अथवा उनका क्रोध; फिर राजा-महाराजाओं की क्रियायें; तर्क—धार्मिक और दार्शनिक मतमतान्तर, बस इन्हीं विषयों का समावेश बहुधा संस्कृत-नाट्यकारों ने किया। भरतमुनि का वाक्य था—

देवानामसुराणां च राजलोकस्य चैव हि।
ब्रह्मर्षीणां च विज्ञेयं नाट्यं वृत्तान्तदर्शकम्।,

शोकान्त नाटक का निषेध संस्कृत में अवश्य है, परन्तु शोक पूर्णरूप से विद्यमान था। गोवर्धन ने 'आर्यासप्तशती' में जो भवभूति की प्रशंसा की है, वह उल्लेखनीय है—'एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा।' संस्कृत के शास्त्रकारों ने नाटक के दश प्रकार बताये हैं। 'दशरूप' में धनंजय का श्लोक है—

'नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यंकेहामृग इति।,

परन्तु प्रायः सभी प्रकार में किसी-न-किसी रूप में दैवी सम्बन्ध है। हमारे पूर्वजों का मत था कि परलोक का ध्यान लुप्त नहीं होना चाहिए, आनन्द-प्रमोद के अवसर पर भी ईश्वर की

अनुकम्पा का, ईश्वर की महिमा का, ज्ञान रहना चाहिए। यहाँ तक कि पापाचारी भी ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। 'मृच्छकटिक' में शर्विलक कार्त्तिकेय की आराधना करता है।

यह हुई पुरानी बात। वर्तमान युग में ईश्वर का ध्यान यदि कभी आता है तो केवल विपत्ति में। अन्यथा उनके अस्तित्व और नास्तित्व का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। मनुष्य का जीवन स्वयं इतना विस्तृत हो गया है, समाज के प्रश्न इतने गूढ़ और जटिल हो गये हैं; विचार-क्षेत्र इतना निस्सीम हो गया है; शिक्षा, धर्म्म, विज्ञान, कला-सम्बन्धी समस्यायें इतनी संख्या में और इस कठिनता से उपस्थित हो गई हैं—कि आज के कवि के लिए यह असम्भव है कि वह केवल ईश्वर-चिन्ता में मग्न रहे।

प्रस्तुत नाटक 'राजयोग' के लेखक आधुनिक विषयों का समावेश अपनी पुस्तकों में करते हैं। किसी को अधिकार नहीं है कि इसके कारण पुस्तक की अवहेलना करे। प्रत्येक युग में कुछ ऐसी समस्यायें होती हैं, जिन पर बहुधा शिक्षित-समाज सोचा करता है। नाटक यदि समाज की सेवा का उद्देश्य रखता है, तो लेखक का कर्तव्य है कि इन समस्याओं की ओर ध्यान दिलावे। एक अँगरेजी कवि का कहना है कि नाटक के मूल सिद्धान्त नाटक के पढ़नेवाले निर्णय करते हैं। शेक्सपियर, कौंग्रीव, ड्रायडन, मोलियर, कौल्डेरन, शेरिडन, बर्नार्डशा, गाल्सवर्दी—यदि इनके नाटकों में इनके समय का प्रतिबिम्ब मिलता है, तो क्यों न 'राजयोग' में भी हमारे देश की स्थिति दृष्टिगोचर हो? हमें अधिकार केवल इन प्रश्नों के पूछने का है—कथा रुचिकर है कि नहीं? चरित्र-चित्रण में कहाँ तक सफलता हुई है? पात्रों का वार्तालाप मनोरंजक है कि नहीं? किसी अंश में अस्वाभाविकता तो आने नहीं पाई?

नाटक पढ़ने पर अथवा देखने पर चित्त पर क्या प्रभाव होता है ? मैं तो केवल अपनी ही रुचि के अनुकूल इन प्रश्नों का उत्तर दे सकता हूँ। सम्भव है, औरों का विचार भिन्न हो—"नैको मुनिर्यस्य मतन्न भिन्नम्" । मैंने इस नाटक को ध्यान से पढ़ा है, और मेरे विचार में योग्य लेखक ने बहुत अंशों में सफलता प्राप्त की है। कहीं-कहीं तो दृश्य बहुत ही करुणाजनक है। चम्पा के चित्रण में मिश्रजी ने बड़ी कुशलता दिखाई है। यदि मुझे कोई दोष देख पड़ता है, तो यह कि कहीं-कहीं पात्रों के वाक्य लम्बे हो गये हैं। अन्यथा नाटक प्रशंसनीय है और आशा है कि हिन्दी-साहित्य में इसका आदर होगा।

प्रयाग
११-४-३४

अमरनाथ झा, एम० ए०
(अध्यक्ष, अँगरेजी-विभाग,)
प्रयाग-विश्वविद्यालय

पात्र

नरेन्द्र

शत्रुसूदन

रघुवंश

गजराज

चम्पा, सिपाही, नौकर-आदि ।

राजयोग

पहला अङ्क

[रत्नपुर के राजकुमार शत्रुसूदनसिंह का बँगला । यह बँगला सिविल लाइन्स में है। इसके आस-पास बड़े-बड़े वकीलों, बैरिस्टरों, सरकारी नौकरों और नई रोशनी के रईसों के बँगले बने हैं। बँगला दुमंजिला; तूतिये से रँगी हुई दीवारें, पालिश से चमकते हुए सागौन के किवाड़, शीशे की खिड़कियाँ, सामने बगीचा और बगीचे के बीचो-बीच सुन्दर लॉन सब तरह से इनकी श्रीवृद्धि कर रहे हैं। मनुष्य की आकाँक्षा-निवृत्ति के लिए जिन-जिन बाहरी चीजों की जरूरत होती है,वे सभी इस बँगले के साथ लगी हैं । सामने सिमेंट की बनी चिकनी और चौड़ी सड़क, ईंटों की झाँझरदार चहारदीवारी। बँगले से निकलकर सड़क पर आने के लिए जो फाटक बना है; वह लॉन के ठीक सामने है और वहीं से बँगले की निचली तह का सबसे बड़ा कमरा किवाड़ खुले रहने पर साफ़ देख पड़ता है।

कुआर का महीना है । घाम और बादल साथ-ही-साथ चल रहे हैं। शाम को प्रायः चार बज रहा है। नीचे के बड़े कमरे के, जो सड़क के ठीक सामने है, तीन किवाड़ खोलकर कोई अधेड़ पुरुष दरवाजों के सामने बारी-बारी से खड़ा होकर पीतल की छड़ में लगे हुए रंगीन पर्दों को समेट रहा है। इसका चौड़ा और ऊँचा मस्तक, ऐंठी हुई लम्बी मूछें, सिर पर जयपुरी तर्ज़ का मुरेठा, गेहुएँ रंग के चेहरे में बड़ी-बड़ी सुर्ख आँखें—आज राणा प्रताप का जमाना नहीं—नहीं तो इसकी मजबूत मुट्ठी में खुली सिरोही लचकती होती। इसका नाम गजराजसिंह है। गजराजसिंह बँगले की सीढ़ी से नीचे उतरकर लॉन की

ओर बढ़ता है। बगीचे में कई आदमी काम में लगे हैं। कोई पौधों की जड़ गोड़कर उसमें खाद डाल रहा है, कोई पानी डाल रहा है। भड़कीली पोशाक में कई सिपाही बन्दूक में संगीन लगाये घूम रहे हैं।

राजकुमार शत्रुसूदनसिंह का कमरे की बगल का दरवाजा खोलकर इस कमरे में प्रवेश। कमरे की सजावट अँगरेजी ढंग पर हुई है। फ़र्श की जगह ऊनी रंगीन कालीन बिछी हुई है। कमरे के बीच में छोटी तिपाई और उसके चारों ओर गद्देदार कुर्सियाँ पड़ी हैं। सामने की दीवार में खूँटियों की कतार पर जानवरों के सिर और उनके नीचे भड़कदार बाजारू चित्र बने हैं। दीवाल के बीच में ठीक सामने घड़ी लगी है, उसमें चार बज रहा है। राजकुमार की अवस्था प्रायः तीस वर्ष की है। एकहरा, गोरा, लम्बा शरीर, नुकीली नाक, बड़े-बड़े कान, लम्बी और चमकीली आँखें, लेकिन धँसी हुई। लम्बे काले बाल। राजकुमार अभी सोकर ऊपर से नीचे उतर रहे हैं, और इसलिए अस्त-व्यस्त हैं। खद्दर की कमीज, जिसमें गले के नीचे छाती का कुछ हिस्सा खुला देख पड़ता है, खद्दर की धोती और मखमली चट्टी पहने हैं।]

शत्रुसूदनसिंह—गजराज ! [कमरे के नीचेवाले दरवाजे पर होकर दायाँ हाथ अपने सिर पर फेरने लगते हैं]

गजराज—[घूमकर तेज़ी से उनकी ओर बढ़ता हुआ] हाँ... सरकार......

शत्रुसूदन गंभीर होकर कुछ सोचने लगते हैं। गजराज पास जाकर उनकी ओर देखता रहता है।

शत्रुसूदन—दीवान साहब नहीं आये न ? [सिर हिलाते हैं]

गजराज—[पीछे की ओर देखकर] न · सरकार........

शत्रुसूदन—हाँ कहो, चुप क्यों हो गये ?

गजराज—[सहमकर] क्या कहूँ मैं ?

शत्रुसूदन—क्यों ? तुम्हारी आँखें कह रही हैं कि तुम कुछ कहना चाहते हो।

गजराज—नहीं तो सरकार...कुछ नहीं...मैं क्या... [चुप हो जाता है]

शत्रुसूदन—[चिढ़कर] तुम्हारा स्वभाव भी दिन-प्रति-दिन बनता जा रहा है। तुम्हें भी मेरी नज़र बचाने की आदत पड़ गई है। जिधर देखता हूँ, सन्देह...[गजराज की ओर देखकर] मनुष्य जो बात छिपाकर रखता है, वह विष से भी भयङ्कर और छुरी से भी तेज़ होती है। समझे ? मुझे तो ऐसी आशा नहीं थी कि मैं तुम्हारे लिए भी बोझ हो जाऊँगा।

गजराज—[भय के स्वर में] सरकार की शपथ...जाते वक्त मालिक से मेरी भेंट नहीं हुई।

शत्रुसूदन—मेरी क़सम [मुस्कराकर] गजराज, 'मेरी क़सम' तुम लोगों के लिए बड़ी आसान हो गई है।

गजराज—सरकार......[निराश और उद्विग्न होकर उनकी ओर देखता है।]

शत्रुसूदन—इस तरह क्यों देख रहे हो ? मैंने तुम्हारा कुछ छीन तो नहीं लिया ? [पीछे की ओर घूमकर और दीवार की घड़ी में देखकर] अभी नहीं आये ? दो घन्टे से भी ज्यादा हो रहा है, आश्चर्य है !

गजराज—हुज़ूर से क़हकर नहीं गये ?

शत्रुसूदन—तुम्हारे 'सरकार' और 'हुज़ूर' के मारे तो और भी नाकों दम हो गया है। बात-बात में सरकार और हुज़ूर......सीधे क्यों नहीं बोलते ? कभी सरकार और हुज़ूर न कहना। मुझे अच्छा नहीं लगता।

गजराज—अपने अन्नदाता को.........

शत्रुसूदन—अजी कौन किसका अन्नदाता है ? संसार स्वार्थ

ी धुरी पर घूम रहा है। मैं अपना काम स्वयं न कर तुमसे
कराता हूँ। तुमसे सेवा लेकर अन्नदाता नहीं कहा जा सकता।
वह तो तुम्हारी मिहनत, तुम्हारी मजदूरी है और तुम वह कहीं भी
पा सकते हो।

गजराज—मालिक गये कब ?

शत्रुसूदन—फिर वही ग़लती। मनुष्य का मालिक और कोई
नहीं हो सकता। वह तो स्वयं अपना मालिक होता है। मालिक
नहीं, उन्हें दीवान साहब और मुझे राजा साहब कहा करो।
हुज़ूर और सरकार कहना मत। हाँ, क्या पूछा ? ऐं दीवान .
साहब—......यही न ?

शत्रुसूदन—ऊपर सामनेवाले कमरे में बातें कर रहे थे।
[दो कदम पीछे हटकर आरामकुर्सी पर बैठते हुए] इतने में ही
[सड़क के किनारे फाटक की ओर हाथ उठाकर] यहाँ फाटक पर
कोई आदमी आकर खड़ा हो गया। उसकी ओर देखकर कहने
लगे,—कौन है...कौन है ?

[गजराज आगे बढ़कर किवाड़ पकड़कर खड़ा होता है।]
...जब तक मैं उधर देखूँ, पागल की तरह हांफते हुए नीचे की
ओर दौड़ पड़े...बूढ़े आदमी...[सिर पर हाथ रखकर] दरवाजे
की चोट लगी; सिर थामकर बैठ गये] मैं उठकर उनकी ओर
रहा, लेकिन वे उठकर तेज़ी से सीढ़ी के नीचे उतर गये। पुका-
रता ही रह गया, लेकिन सुने कौन ? जैसे आंधी में उड़ते हुए
फाटक पर पहुँच गये।...उसके बाद [कुछ सोचकर] पता नहीं,
किधर निकल गये। हाथ-पैर में दम तो है नहीं। लोग इतने
दिन तक जीते क्यों रहते हैं। [गम्भीर होकर] मालूम होता है,
[illegible] अब मुझे किसी और को रखना पड़ेगा। इनसे तो
अब काम......

गजराज—जी [भय और सन्देह से उनकी ओर देखता है]

शत्रुसूदन—तुमसे राय नहीं पूछता [उसकी ओर ध्यान से देखते हुए] और न तो मैं उन्हें आज ही अलग कर रहा हूँ। सोच रहा हूँ...हाँ...उनकी अवस्था क्या होगी ?

गजराज—आज ही पूछा था, बोले...अस्सी साल।

शत्रुसूदन—[विस्मय में] अस्सी साल ? ऐं ! अच्छा अब कहो, इतना बुड्ढा आदमी...कोई उत्तरदायित्व का काम सँभाल सकता है ? घबड़ा क्यों रहे हो ? विचार करो शायद गद्दी पर बैठे-ही-बैठे किसी दिन चल बसें, तब ? [सिर हिलाते हुए] मैं अब उन्हें आराम देना चाहता हूँ। इसमें सन्देह नहीं, उनका शरीर...

गजराज—बड़ी मजबूत काठी थी सरकार...वज्र की बनी थी। मेरी उम्र के जब थे, तब अपनी आँख से देखा था [गर्दन टेढ़ी कर] जंगल में खेदा पड़ता था। तमाशा देखने के लिए बड़े सरकार मचान पर बैठ जाते थे और वे [जैसे कुछ याद कर रहा हो] तलवार निकालकर, चाहे बाघ पाँच हाथ लम्बा हो या सात हाथ, तलवार के एक ही हाथ...बस एक ही हाथ में [अपनी बाँह घुमाता है जैसे तलवार चला रहा हो] कमर से काटकर दो टुकड़े कर देते थे। ऐसा सधा हाथ था कि पाँच बरस में तीस बाघ गिरा दिये। ऊपर चौकी पर जो खाल बिछी है...इन्हीं ने मारा था, जिस पर शतरञ्ज की चौकी रखी है...बड़े सरकार उसी पर पूजा करते थे।

शत्रुसूदन—तुम्हारा मुँह खुलना चाहिए, फिर तो तुम सिंहासन-बत्तीसी की पुतली हो जाते हो। जिस पर शतरञ्ज की चौकी बिछी है, उसी पर बड़े सरकार पूजा करते थे, यह सब तुमसे कौन पूछता है ? क्यों ? [कुछ सोचने की मुद्रा में] आज सिनेमा जाना था। [बायें हाथ से सिर का बाल ठीक करते हुए] नरेन्द्र

गजराज—[चौंककर] खून ही तो है। [शत्रुसूदन की ओर देखते हुए] पानी लाऊँ ?

शत्रुसूदन—जाते क्यों नहीं ? या इतने के लिए कोई प्रस्ताव पास करना होगा ?

[गजराज का प्रस्थान।]

रघुवंश—ऊपर दरवाज़े से धक्का लग गया। कहाँ जा रहे हो गजराज ? छत्री ख़ून से नहीं डरता। [शत्रुसूदन की ओर देखते हुए] बुरे ज़माने में पैदा हुआ था। दिल खोलकर ख़ून के साथ खेल नहीं सका। दिल की बात दिल ही में रह गई।

शत्रुसूदन—आपको तकलीफ़ हो रही है !

रघुवंश—[उनकी ओर देखते हुए] कोई वश भी तो नहीं है सरकार...

शत्रुसूदन—मैं चाहता हूँ कि आपके निर्वाह का प्रबन्ध कर आपको इस काम से छुट्टी दे दूँ।

रघुवंश—लेकिन अभी नरेन्द्र का पता तो कहीं नहीं लगा। [शत्रुसूदन की ओर उद्वेग से देखने लगता है] तब कैसे मुझे छुट्टी...

शत्रुसूदन—लेकिन नरेन्द्र से इससे क्या मतलब !

रघुवंश—मेरे बाद दीवान होने का हक़ उसी का है।

शत्रुसूदन—जी नहीं। कोई भी योग्य आदमी दीवान हो सकता है।

रघुवंश—कोई भी दूसरा आदमी हो सकता है, दीवान ? न राजकुमार ! तुमको मालूम होगा, यह गद्दी पुश्तैनी है।

शत्रुसूदन—जी नहीं। इस ज़माने में कोई नौकरी पुश्तैनी नहीं होती। दुनिया अब बदल गई।

रघुवंश—[उत्तेजित होकर उठते हुए] तीन सौ वर्षों से यह पद मेरे खानदान में है। मेरे पास फ़रमान है—महाराज जानसिंह

का, महाराज विक्रमसिंह का, महाराज महेन्द्रसिंह का और बड़े सरकार का। आप इसे तोड़ेंगे क्यों ?

शत्रुसूदन—मैं इसे चोरी करना समझता हूँ। मैं इसे जरूरी नहीं समझता।

रघुवंश—क्यों आप इसे ज़रूरी नहीं समझते ? मेरे परदादा सामन्तराव चन्दनसिंह महाराज जीतसिंह की जान बचाने में मारे गये थे और उसी की यादगार में यह गद्दी उनके वंशधरों को मिली। खुद महाराज ज़ीतसिंह ने पुश्तैनी फरमान दिया और उसके बाद......

शत्रुसूदन—[हाथ उठाकर] चुप रहिए, मैं इतिहास सुनना नहीं चाहता......जिसमें सिद्धान्त की बुराई है...किस्सा कहने से [कुछ सोचकर] जो नरेन्द्र अपने बूढ़े बाप का नहीं हुआ...जो यह नहीं सोचता, आप मर रहे हैं....या......वह रियासत की कौन-सी भलाई कर सकेगा। उसके भरोसे...

रघुवंश उत्तेजना में काँपने लगते हैं। शत्रुसूदनसिंह उनकी ओर रूखी नज़र से देखते हैं। गजराज का प्रवेश। गजराज उन दोनों को उस स्थिति में देखकर सहम उठता है। लौटकर जाना चाहता है।

रघुवंश—गजराज, छोटे सरकार ने मुझे रियासत से निकाल दिया।

शत्रुसूदन—रियासत से नहीं.... नौकरी से आपको अलग करना......

रघुवंश—नौकरी से अलग कर देने का मतलब है रियासत से निकाल देना। जिस गद्दी पर मेरे बाप, दादा, परदादा, साठ बरस मुझे भी......साठ बरस [सिर हिलाकर] साठ......नये अफसर आज आते हैं—कल जाते हैं।

शत्रुसूदन—आपके गुजारे का प्रबन्ध मैं कर दूँगा।

रघुवंश—मेरे गुजारे का प्रबन्ध ....हूँ, तो मुझे भीख देंगे .... मेरे बुढ़ापे पर रहम कर......हूँ, न हुआ वह ज़माना, नहीं......तो यह पचासी बरस का बुड्ढा तीन पहर के भीतर रतनपुर का राजा होता। [राजकुमार की ओर देखकर] समझते हो ? [सिर हिलाकर] नहीं . ...अच्छा, अगर नरेन्द्र मिल जाय।

शत्रुसूदन—मिल जाने पर भी नहीं—मैं नरेन्द्र का विश्वास नहीं कर सकता। और पुश्तैनी नौकरी भी ठीक नहीं। मैं तो सिद्धान्त के लिए.........

रघुवंश—अँगरेजी, संस्कृत तो मैंने पढ़ी नहीं। इसलिए शायद सिद्धान्त मैं न समझ सकूँ। थोड़ी फारसी मौलवी से पढ़ी थी।......नरेन्द्र तो पढ़े हैं। इलाहाबाद की अँगरेजी की सब पढ़ाई खतम कर चुका। बी० ए० पास करने के बाद, दो वर्ष कानून पढ़ता रहा।

शत्रुसूदन—मैं भी नरेन्द्र की योग्यता को मानता हूँ ..लेकिन अब मैं यह रिवाज तोड़ देना चाहता हूँ।

रघुवंश—तो मैं अब नरेन्द्र की कोई फिक्र न करूँ।

शत्रुसूदन—क्यों ? आपके लड़के हैं.....आपके बुढ़ापे में . ... ..

रघुवंश—ओह, लड़का और बुढ़ापे में ? . मैं उसे खोजता था अपनी लठोड़ी के लिए......लेकिन जब वही चली गई तब उसकी जरूरत नहीं। किसी जङ्गल में......किसी पहाड़ में...[दोनों हाथों की हथेली ऊपर कर] अब तो जिन्दगी भी आ गई। अच्छा शत्रुसूदन ! तो अब मैं जाऊँ न ?

शत्रुसूदन—कहाँ ?

रघुवंश—किसी जगह, जहाँ आदमी न हो। जहाँ मेरा मुँह कोई न देख सके और मैं भी किसी को न देखूँ।

[गर्दन उठाकर ऊपर देखने लगता है।]

शत्रुसूदन—लेकिन मैं आपके गुज़ारे के लिए तो........

रघुवंश—[पैर पटककर] सा धा । . गुज़ारे का नाम फिर नहीं । [तेज़ी से सिरोही खींचकर] यह . यह.. यह.. [सिर हिलाकर] मेरा गुजारा इससे होगा...इससे । मेरा गुजारा इससे होगा शत्रुसूदन ! [वहीं धरती पर बैठकर हाँफने लगता है ।]

शत्रुसूदन—[रघुवंश की ओर क्रोध से देखते हुए] गजराज, देख रहे हो न ? इनका दिमाग़ कितना बिगड़ गया है । मैं अब इससे अधिक सहन नहीं कर सकता । रक्षा के बल खेत खाना मेरे बरदाश्त के बाहर हो रहा है । बोलते क्यों नहीं गजराज ?

[गजराज सिर नीचे कर चुपचाप खड़ा रहता है ।]

रघुवंश—क्या करोगे ? मुझे ज़लाल करोगे...क़ैद करोगे ? हाँ क़ैद करोगे...यही न.. यही...न...बस और क्या ? लेकिन जो बात सच है . वह...वह मिटा नहीं सकोगे । ठाकुर बिहारी सिंह की लड़की से नरेन्द्र की शादी पक्की हो चुकी थी । दोनों कालेज में सुना था साथ ही पढ़ते थे...शायद बातचीत भी... प्रेम भी ..। लेकिन तुम राजा थे...तुम्हारे हाथ में, तुम्हारी जीभ में ताकत थी...तुमने पहली रानी के जीते ही ठाकुर साहब की लड़की से शादी कर ली । नरेन्द्र मारे शर्म के, मारे रंज के, कहीं चला गया । तुम्हें उसका संदेह है । मेरी गद्दी इसलिए तुम उसे नहीं दे सकते । राजपूत और सब हो सकता है, लेकिन नमकहराम और विश्वासघाती । [हाँफते हुए] खैर . अच्छा... अच्छा [सिरोही म्यान में रखकर] अच्छा तो जा रहा हूँ... रतनपुर नहीं । दुनिया बहुत बड़ी है । साढ़े तीन हाथ धरती बहुत मिलेगी । अपनी रियासत जाकर सँभालो या छोड़ दो । कौन जानता है, शायद रियासत के हक़ के बारे में भी पुश्तैनी बात न चलती हो । भगवान् तुम्हारा कल्याण करे ।

[रघुवंशसिंह का प्रस्थान। गजराज भी बिना कुछ कहे-सुने उनके पीछे-पीछे चलता है। शत्रुसूदन लौटकर कमरे में आरामकुर्सी पर बैठते हैं, बँगले के फाटक के बाहर होकर रघुवंशसिंह ज्योंही सड़क पर पहुँचते हैं, गजराज बढ़कर हाथ पकड़ लेता है।]

रघुवंश—क्या है रे !

गजराज—आपके साथ......

रघुवंश—कहाँ ...?

गजराज—जहाँ कहीं आप चलें...। आपके साथ जंगल में... पहाड़ पर।

रघुवंश—[गम्भीर होकर] मेरी तरह तुम भी नमकहरामी करोगे ?

गजराज—हे भगवान् !

रघुवंश—[जैसे होश में आकर] क्या कहा ?

गजराज—आप नमकहरामी कर रहे हैं ?

रघुवंश—और नहीं तो क्या ? अपने राजा की मर्जी के खिलाफ रियासत छोड़कर जा रहा हूँ...नमकहरामी नहीं तो और क्या है ? इसीलिए न कि जहाँ दीवान की गद्दी पर रहा, वहाँ किसी का मातहत बनकर नहीं रहूँगा। तीन सौ वर्षों तक मर्यादा की जो रस्सी हमारे वंश के गले में हार की तरह रही.....वही अब पैरों में बेड़ी की तरह रहेगा। मैं इसे सहन नहीं कर सकता... इसलिए भाग रहा हूँ...हूँ...हूँ, कहीं कोई न जाने कि बूढ़ा दीवान रघुवंशसिंह क्या हुआ, कहाँ गया ? [क्रोध में स्वर के साथ ही-साथ उनका सारा शरीर काँपने लगता है।]

गजराज—मैं भी यहाँ नहीं रहूँगा। चालीस वर्ष का प्यार, सारे घर भर ही नमकहरामी कहा जाय। मेरा प्यार ..उसका आज मोल घटता जाता है। मैं अब उसे बर्दाश्त नहीं सकता।

रघुवंश—हूँ हूँ तुम्हें [ठहरते हुए से पीछे देखते हुए] लड़कों को

तरह रो रहा है। किसलिए रे !...अपने राजा को छोड़कर मेरे लिए ? मेरा मोह [सिरोही की मूठ पकड़कर] यह आज शत्रुसूदन के गले के पार हो गई होती···लेकिन मैंने सोचा, उसकी देह में महाराज जीतसिंह का खून है, जिसके लिए मेरे दादा की जान गई। किसी ने पेड़ लगाया और मैं काट दूँ···इसी लिए हाथ फड़कता था, लेकिन मन कहता था, नहीं···नहीं। हाँ कभी नहीं। ऐसा भी क्या ? उसी को छोड़कर तू मेरे साथ चलेगा ? बोल। बोल। [सिर हिलाकर] बोलता क्यों नहीं रे ? तू भी अपने को क्षत्री कहता है। तुमसे अच्छे तो जंगल के भील···जो अपने राजा के लिए····· ···

[तेजी से आगे बढ़ जाता है। गजराज वहीं कुछ देर तक स्तब्ध होकर खड़ा रहता है। इधर-उधर चारों ओर देखता है, जैसे कोई रास्ता नहीं मिलता। फिर धीरे-धीरे बँगले की ओर बढ़ता है।]

शत्रुसूदन—अभी नींद नहीं खुली ? पाँच बज रहा है। सिनेमा चलना है।

[बगल के कमरे का किवाड़ खोलकर शत्रुसूदन की स्त्री चम्पा का प्रवेश। चम्पा के वेश की सादगी, धानी रंग की सादी साड़ी, पैर में कामदार जयपुरी जूता और बाँयें हाथ में रिस्ट वाच।]

वाह ! मालूम हो रहा है, सेनेट हाल में परीक्षा देने जा रही हैं···[मुस्कराकर] क्यों ? आज नींद गहरी लगी ?

चम्पा—जी नहीं। सो नहीं रही थी। यहीं खड़ी-खड़ी सुन रही थी। बूढ़े दीवान का क्या होगा ?

शत्रुसूदन—होगा क्या ? वे इतने बूढ़े हो गये कि उनपर रियासत का काम छोड़ना [गर्दन टेढ़ी कर चम्पा की ओर देखने लगता है]

चम्पा—आखिर किसी को रखना तो पड़ेगा न ?

चम्पा—मेरे लिए ? [कई बार सिर हिलाकर] हूँ, मेरे लिए ? हर्गिज़ नहीं···अपने लिए । बड़ी रानी की झिड़की से डरकर···उनके सतीत्व के तेज से झुलसकर और उससे भी भयंकर·········

शत्रुसूदन—वह क्या ?

चम्पा—वही नरेन्द्र के विरक्त होकर निकल जाने की कहानी। पाँच वर्ष हो गये, [गम्भीर होकर] पता नहीं । मरना-जीना कोई नहीं जानता, लेकिन सन्देह सब किसी को है कि उन्होंने आत्म-हत्या कर ली—नहीं तो क्या अब तक पता न चलता ? अगर आपने पिताजी पर दबाव डालकर मुझसे शादी न कर ली होती, तो बूढ़े रघुवंश की दुनिया न बिगड़ती । कहीं ईर्ष्या आवेश में वे भी अपना जीवन न छोड़ बैठें ।

शत्रुसूदन—तुम नरेन्द्र को अब भी प्यार करती हो ?

चम्पा—इसका उत्तर तो मैं न दूँगी ।

शत्रुसूदन—अच्छा, अगर तुम्हें मुझमें और नरेन्द्र में—इन दोनों में किसी एक को ज़हर देना हो तो किसको ज़हर दोगी ?

चम्पा—[निस्संकोच स्वर में] नरेन्द्र को ।

शत्रुसूदन—क्यों ?

चम्पा—क्योंकि ऐसी ही शास्त्र की व्यवस्था है ।

शत्रुसूदन—अच्छा तो तुम शास्त्र की व्यवस्था भी

चम्पा—शिक्षा से परख भी आ जाती है। किसी बड़े सिद्धान्त की रक्षा में यदि व्यक्ति का सर्वनाश भी हो जाय, तो कोई बात नहीं। शास्त्रों की मर्यादा और मेरे मन में जहाँ-कहीं द्वन्द्व चलता है, मैं सदैव अपने हृदय को लात मारती हूँ।

[गम्भीर होकर सोचने लगती है।]

शत्रुसूदन—[गम्भीर होकर] मालूम होता है, मैं भी कुछ सोचने लगूँगा।

चम्पा—लेकिन इससे आपका कोई उपकार नहीं होगा। सोचने के लिए आप बनाये नहीं गए थे। आप जितना ही सोचेंगे—संसार की विभीषिका आपके सामने और भयंकर होती जायगी। आप सँभाल नहीं सकेंगे। संसार में जो कुछ भी सुन्दर और उपयोगी है, सब आपके लिए है...इन चीज़ों का सञ्चय करते चलिए। आपका जीवन इसीलिए है—केवल इसीलिए।

शत्रुसूदन—यही क्यों?

चम्पा—इसलिए कि आप सहिष्णु नहीं हैं। आप संसार को केवल अपनी ही दृष्टि से देखते हैं। आपका ही मापदण्ड सही है—यह धारणा आप छोड़ नहीं सकते।

शत्रुसूदन—[विरक्त होकर] तो तुम मुझे 'आप' कहोगी? 'तुम' नहीं क्यों?

[उसकी ओर एकटक देखने लगता है]

चम्पा—स्त्री के लिए पति ईश्वर है। आप नहीं जानते? सधवा स्त्री के लिए तीर्थ और व्रत शास्त्रों में वर्जित है। पति ईश्वर है...पति भगवान् है। मैं आपको ईश्वर, भगवान्, जो कुछ है—सब। आप मेरे मुँह से 'तुम' सुनने के लिए क्यों इस तरह लालायित हैं?

शत्रुसूदन का ध्यान भंग होता है। गहरी साँस खींचकर वह सड़क की ओर देखता है। नरेन्द्र से उसकी चार आँखें होती हैं। नरेन्द्र की आँखें उस क्षण चमक उठती हैं और वह झुककर पान की पीक थूकने लगता है। शत्रुसूदन सड़क की ओर बढ़ता है। नरेन्द्र इस समय कमरे में बैठी हुई चम्पा की ओर देख रहा है।]

शत्रुसूदन—[नरेन्द्र के पास पहुँचकर] किसे देख रहे हैं महोदय ?

नरेन्द्र—किसीको नहीं।

[शत्रुसूदन की ओर इस तरह देखता है—जैसे सिंह देखता है अपने शिकार की ओर। शत्रुसूदन क्षण भर के लिए स्तम्भित हो रहते हैं।]

शत्रुसूदन—आपको जाना कहाँ है ?

नरेन्द्र—[कुछ सोचते हुए] क्या कहा ?

शत्रुसूदन—[उद्विग्न होकर] मैं पूछता हूँ, आप कौन हैं ? क्या चाहते हैं ? आपको कहाँ जाना है ?

योगियों के लिए अपना परिचय बतलाना वर्जित है। इसीलिए मैंने कहा कि यह सब हमारे सम्प्रदाय में नहीं बतलाया जाता।

शत्रुसूदन—[जैसे कुछ सोचकर] मैंने कई बार आपको भिन्न-भिन्न वेश में यहाँ खड़े होते देखा है।

नरेन्द्र—हाँ, सही है। राजयोग की परिपाटी के अनुसार मुझे दिन में तीन बार कपड़े बदलने पड़ते हैं। मैं जब कभी इधर से निकलता हूँ, इस जगह थोड़ी देर के लिए खड़ा हो जाता हूँ। [बँगले की ओर हाथ उठाकर] जिनका इतना वैभव है—वे बड़े दुखी हैं। सुख के लिए ही इतना सामान किया गया है। यह आलीशान बँगला; इसके भीतर की मेज़, कुर्सियाँ, पलँग, मसहरियाँ, यह बगीचा, लॉन; लेकिन तब भी इसके भीतर के रहनेवाले बड़े दुखी, हाँ बड़े दुखी…इन्हीं की दशा पर विचार करने के लिए मैं कभी-कभी खड़ा हो जाया करता हूँ। योगी जगत् का अनुभव यों ही दूर से करता है…समीप से नहीं, इसमें लिप्त होकर नहीं।

शत्रुसूदन—आप यहीं शहर में रहते हैं?

नरेन्द्र—मैंने तुमसे कह तो दिया कि योगी के विषय में इस तरह पूछ-ताछ अच्छी नहीं। तुम्हारा ही नाम राजकुमार शत्रु-सूदनसिंह है? [अलफी की जेब से चाँदी का पनडब्बा निकालकर पान खाते हुए, फिर जेब में कुछ टटोलते हुए] उँह, पता नहीं, सुर्ती की डिबिया कहाँ गई? [सुर्ती की डिबिया, जो कि सोने की बनी है, निकालकर खोलता है—उसकी सुगंध हवा में मिल जाती है। शत्रुसूदन एक गहरी साँस लेकर सुगन्ध का आनन्द लेता है] [मुस्कराकर] राजकुमार, यह सुगन्ध योगी के अंश की है—तुम्हारे अंश की नहीं, लेकिन तुमने तो जैसे हर तरफ से योगी

की चीज़ को अपनी बनाने का संकल्प कर लिया है। [गम्भीर होकर कुछ सोचने लगता है। राजकुमार चुपचाप सब कुछ भूलकर उसके मुँह की ओर देखने लगता है।]

हां, तो बतलाया नहीं। तुम्हारा ही नाम राजकुमार शत्रुसूदन-सिंह है ?

शत्रुसूदन—जी हां•••लेकिन•••आपको कैसे मालूम...

नरेन्द्र—फिर वही प्रश्न ? मैं जो पूछता हूं, उसका जवाब दो। मुझसे कुछ न पूछो। तुम्हारे लिए जो उपयोगी होगा, मैं स्वयं कह दूंगा। मेरी आँखें तुम देख रहे हो ?

शत्रुसूदन—जी हाँ•• कितनी चमक है ?

नरेन्द्र—अच्छा. तो मेरी आँखों में चमक है ! अब देखो, [एकाएक सिर को पीछे फेंकता है] देख रहे हो मेरी आँखें ?

शत्रुसूदन—जी नहीं। आँखों की जगह केवल गड्ढे देख पड़ते हैं।

नरेन्द्र—[मुस्कराकर] इसी तरह अंधा बनकर मैं हिमालय पार कर गया। जहाँ पासपोर्ट की जरूरत पड़ती थी मैं इसी तरह अन्धा हो जाता था। इस तरह मैं तिब्बत के पहाड़ों और जङ्गलों में घूमता रहा। [मुस्कराने लगता है] योगी तो शेर को वश में कर लेता है और तुम मनुष्य को अपनी इच्छानुसार नहीं चला सकते !

शत्रुसूदन—बड़ी कृपा हो यदि भीतर चलें। आपसे बहुत-कुछ सुनने को जी चाहता है।

नरेन्द्र—किसी दूसरे दिन; सुखी रहो [जाना चाहता है]

शत्रुसूदन—महात्मन् ! हम लोग सचमुच दुखी हैं। आपके चलने से••मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए।

नरेन्द्र—अच्छा, चलो।

[नरेन्द्र फाटक के भीतर प्रवेश कर बँगले की ओर बढ़ता है। उसके पीछे शत्रुसूदन है। अँधेरा हो रहा है। गजराज बँगले के बरामदे और कमरे में बिजली की रोशनी जलाता है। चम्पा उसी तरह कुर्सी पर निश्चेष्ट बैठी है। नरेन्द्र कमरे में प्रवेश करता है। चम्पा उसे देखकर तेजी से भीतर चली जाती है। नरेन्द्र भीतर पहुँचकर कुर्सी पर बैठता है। राजकुमार उसकी कुर्सी के पास खड़ा होता है।]

नरेन्द्र—[राजकुमार का हाथ पकड़कर बैठने का संकेत करते हुए] बैठिए ! [शत्रुसूदन संकोच के साथ कुर्सी पर बैठते हैं।]

गजराज—[नरेन्द्र का पैर छूकर] महाराज !

नरेन्द्र— सुखी रहो।

शत्रुसूदन—गजराज, स्वामीजी को जलपान कराओ।

[गजराज का प्रस्थान]।

नरेन्द्र—नहीं, नहीं, तुम जानते हो, मैं राजयोग की साधना कर रहा हूँ—तुम्हारे यहाँ का अन्न-जल स्वीकार नहीं कर सकता। तुम मेरे सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी हो।

शत्रुसूदन —[संकोच से] यह कैसा महात्मन् !

नरेन्द्र इसलिए कि तुम राजा हो और मैं राजयोग की साधना कर रहा हूँ। इसलिए तुम मेरे सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी हो। [कुर्सी के इधर-उधर चारों ओर देखकर कमरे में फर्श की जगह जो रंगीन कालीन बिछा हुआ है, उसी पर पान की पीक थूक देता है। शत्रुसूदन उद्विग्न हो उठता है।] राजकुमार, [मुस्कराते हुए] उद्विग्न क्यों हो उठे ! यहाँ पीकदान नहीं था, इस कारण बाध्य होकर मुझे कालीन पर थूकना पड़ा। अगर मैं इसके लिए उठकर बाहर जाता तो मेरी राजयोग की साधना भंग हो जाती। हूँ, तो तुम मेरे सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी हो न ?

शत्रुसूदन—आप यह बार-बार क्यों कह रहे हैं ?

नरेन्द्र—क्योंकि यही सत्य है। तुम मेरे सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी हो। तुम नहीं जानते, लेकिन मैं जानता हूँ। क्यों, हो न ? [हँसने लगता है]

अच्छा तो महोदय, आप मेरे सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी हैं, क्यों ?

[अलफी के नीचे से खुली कटार निकालता है। शत्रुसूदन की ओर लक्ष्य कर उसे कई बार हिलाता है। शत्रुसूदन भय और संदेह से हिल उठता है।] डर रहे हो ? अपने प्रतिद्वन्द्वी से डरना चाहिए ! [राजकुमार नीचे की ओर देखने लगता है। नरेन्द्र अपनी कटार उसके गले पर रख देता है।]

[तेजी से चम्पा का प्रवेश।]

नरेन्द्र—[कटार उठाकर चम्पा की ओर देखते हुए] आप इस तरह घबड़ा क्यों उठीं ? मैं हत्यारा हूँ। मैं तो केवल साधक हूँ। राजयोगी की कटार राजा के गले पर···यही तो साधना है, लेकिन हत्या करने के लिए नहीं, जीवन-दान के लिए। राजकुमार को आज नया जीवन मिला है।

[शत्रुसूदन उसी तरह सिर नीचे की ओर किये है। चम्पा पहले तो क्रोध से, फिर विस्मय और उद्वेग से, नरेन्द्र की ओर देखती है।]

दूसरा अंक

[गजराज उसी कमरे में कुर्सियों को उठाकर एक ओर दीवार से लगा-कर रख रहा है। कभी-कभी रुक कर कमरे के ठीक बीच में खड़ा होकर बाहर, बँगले के बाहर, लॉन की ओर और सड़क की ओर देख रहा है, जैसे किसी की प्रतीक्षा में हो। बँगले के सामने जो कुछ भी देख पड़ता है, पूर्णमासी की रात होने के कारण चाँदनी में डूबा हुआ-सा है]

[चम्पा का प्रवेश]

चम्पा—[कमरे को ध्यान से देखकर] क्या कर रहे हो जी ? कुर्सियों को उधर क्यों कर दिया ? कुछ-न-कुछ करना चाहिए। क्यों ? यही न ? जब जो मन में आ गया, करने लगे। अगर कोई आ जाय, तो इस कुर्सियों की दूकान को देखकर क्या कहेगा ? [आगे बढ़कर] सभी कुर्सियाँ एक सीध में [सिर कई बार इधर-उधर घुमाती हुई] कहीं भी कोई कुर्सी न तो एक अंगुल आगे और न एक अंगुल पीछे···कुर्सियों की एक सीधी रेखा और उनके बीच में बराबर···हाँ, सब जगह बराबर अन्तर। [गजराज की ओर ध्यान से देखती हुई] तुम रेखा-गणित पढ़े हो ?

[गजराज ऐसी मुद्रा बनाता है, जिससे साफ मालूम हो रहा है कि चम्पा की बात न तो उसकी समझ में आई और न वह समझना ही चाहता है। खड़ा-खड़ा वह केवल कुर्सियों की ओर देखता रहता है।]

बोलते क्यों नहीं ?

गज़राज—क्या बोलूँ ? कोई कुर्सी टूटी तो नहीं है।

चम्पा— कौन कहता है कि टूटी है—मैंने तो नहीं कहा।

गजराज—तब किस लिए मैं पचास वर्ष के बाद पढ़ने जाऊँ ?

कुर्सी बैठने से नहीं टूटती है और रखने से टूट जायगी ?

चम्पा—फिर वही बात। टूटने को तो मैंने नहीं कहा !

गजराज—तब क्या पढ़ने को कहा ?

चम्पा—[मुस्कराती हुई] रेखागणित···रेखागणित···समझे !

गजराज—हाँ···

चम्पा—क्या ? कहो तो सुनूँ।

गजराज—[चम्पा की ओर देखते हुए] रेखागनित···रेखागनित···रेखा [सोचकर] हाँ···गनित···रेखागनित

चम्पा—हैं···हैं···क्या कह रहे हो ?

गजराज—पढ़ तो रहा हूँ। जैसे मदरसे में मुन्सी लोग पढ़ाते हैं।

चम्पा—तुम तो रेखागनित-रेखागनित रट रहे हो।

गजराज—मुन्सी लोग तो ऐसे ही पढ़ाते हैं। सब लड़के एक कतार में खड़े हो जाते हैं और [हाथ हिलाकर] छड़ी लेकर मुन्सी जी कुर्सी पर बैठ जाते हैं। एक ही बात [सिर हिलाकर] इस तरह सभी लड़के ज़ोर-ज़ोर से कहते हैं—जहाँ कोई चुप हुआ कि मुन्सी जी की छड़ी—वही हरा नागिन लपलप करती हुई उसकी हथेली पर और फिर पीठ पर सनासन पड़ने लगी। मैंने पढ़ना देखा है और उसी तरह पढ़ रहा हूँ।

चंपा—नहीं···तुमने और पढ़ना भी देखा है। उस बार बाबूजी के साथ तुम कालेज में गये थे—जहाँ मैं पढ़ रही थी।

गजराज—कहाँ ? मुझे अच्छी तरह याद है। आप नहीं पढ़ रही थीं। नरेन्द्र बाबू भी नहीं पढ़ रहे थे। पढ़ तो रहे थे मास्टर साहब। कभी-कभी चश्मा हटाकर आप लोगों की ओर देखा करते थे। और सब लड़कियों के साथ आप आगे की कतार में दाईं ओर बैठी थीं। मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा था कि मास्टर साहब

की आँख फोड़ दूँ। बड़े घराने की लड़की की ओर इस तरह से देखना'''मैंने तो ठाकुर साहब से कहा था। लड़के-लड़की सब एक साथ बैठे थे, मैं तो मारे लाज के वहाँ से हटकर दूसरी ओर चला गया। उसके बाद नरेन्द्र बाबू ने मुझे बहुत समझाया कि एक साथ पढ़ने में कोई बुराई नहीं है—लेकिन मेरे मन में यह बात नहीं जमी।

चम्पा—[गंभीर होकर] तुमसे मैंने कई बार कहा।

गजराज—[जैसे कुछ याद कर] याद नहीं आया। अब कभी नहीं कहूँगा। नरेन्द्र बाबू का नाम कभी नहीं लूँगा। दुर्गा माई की दुहाई! अब कभी नहीं—कभी नहीं।

चम्पा—[बात बदलने के अभिप्राय से] कुर्सियों को उठाकर वहाँ क्यों रख दिया? इस तरह से तो कुर्सियाँ सिर्फ दूकान में रक्खी जाती हैं—किसी बड़े आदमी के कमरे में नहीं।

गजराज—[कमरे के बीच में खड़ा होकर] यहाँ मसहरियाँ पड़ेंगी।

चम्पा—[विस्मय से] किसके लिए! इस गर्मी में!

गजराज—सरकार के लिए और स्वामीजी के लिए।

चम्पा—[सोचकर] सरकार के लिए भी यहीं?

गजराज—मुझे ऐसा ही कहा गया है!

चम्पा—किसने कहा?

गजराज—स्वामीजी ने।

चम्पा—खैर, स्वामीजी के लिए प्रबन्ध कर दो; लेकिन उनके...

गजराज—स्वामीजी ने उनके लिए भी कहा है, उनके सामने ही और उन्होंने भी मान लिया।

चम्पा—उन्होंने भी मान लिया इस गर्मी में यहाँ सोना?

गजराज--[छत में लगे हुए पंखे की ओर दिखलाकर] बिजली का पंखा है। रात-भर चलता रहेगा।

चम्पा--एक बार और रात भर पंखा चला था--आठ दिन तक चारपाई नहीं छूटी। डाक्टर ने कहा था, पंखे का असर पड़ गया। कमज़ोर आदमी को बहुत बचकर रहना चाहिए।

गजराज--स्वामीजी की बात

चम्पा—स्वामीजी अपनी बात के लिए किसी को आग में नहीं न डाल देगें। अच्छे स्वामीजी रहे। इतनी सुन्दर चाँदनी रात—सारी सृष्टि जैसे सुख और शान्ति से भर उठी है, बाहर साँय-साँय करती हुई निर्द्वन्द्व हवा चल रही है, सामने मौलसिरी के पेड़ पर कू-कू-कू से कोयल जैसे आकाश को हिला रही है, और तुम्हारे स्वामीजी बन्द कमरे में सोना चाहते हैं। इस समय उन्हें किसी पर्वत की चोटी पर, किसी नदी के निर्जन किनारे पर, किसी घने जंगल के बीच में, चाँदनी बिछाकर और चाँदनी ओढ़कर, सो रहना चाहिए। इस कमरे में सोना और जहाँ तक मैं अनुमान करती हूँ, खिड़कियों और दरवाजों को बन्द कर [गजराज की ओर देखकर] तुम्हें विश्वास नहीं होता न? देखना, यही होगा। अक्षर-अक्षर यही होगा; मैं कह तो रही हूँ, देख लेना, यही होगा। तुम्हारे सरकार प्राचीनता के विरोधी हैं। पुरानी सभी बातें उनके लिए बुरी हैं; उनमें कोई सार नहीं। तीर्थ और व्रत सब कुछ आडम्बर और ढकोसला है, स्वर्ग-नरक लोगों को ठगने के लिए ब्राह्मणों ने बनाया है। कर्मकांड बुद्धितत्त्व के प्रतिकूल है। रियासत में पुश्तैनी नौकरी न रहे। यह बात सिद्धान्त के प्रतिकूल है। जो कुछ हो, नया हो, विलायत की नकल हो। घर पर राष्ट्रीय-वादी बनने की नीयत से खद्दर पहन लेते हैं। साहब लोगों से मिलने के समय विलायती सूटकेस का ताला खुल जाता है—यह सब होते हुए भी तुम्हारे सरकार हृदय और मस्तिष्क के बच्चे हैं। कौतूहल

या चमत्कार की कोई भी चीज उन्हें वश में कर लेती है। गंगाजल, चन्दन और प्राणायाम का नाम सुनते ही मुस्करा पड़ते हैं। शंख की ध्वनि इतनी कर्कश होती है कि अनायास कानों में उँगलियाँ [दोनों कानों में दोनों हाथ की कनिष्ठिका उँगली डालती है] और नाक सिकुड़कर एक अंगुल ऊपर उठ जाती है। सबसे बड़ा महात्मा या तपस्वी वह है, जो जादू जानता है, जो उनके अबोध हृदय को उत्तेजित कर उसकी बागडोर अपने हाथ में ले सकता है। [वहीं फ़र्श पर बैठ जाती है]

गजराज—[तेज़ी से एक कुर्सी उठाकर उसके पास रखते हुए] कुर्सी पर सरकार !

चम्पा—उन्होंने तुमको मना किया है न कि किसी को 'सरकार' न कहो ?

गजराज—हाँ.........

चम्पा—तब ?

गजराज—बारह बरस की उम्र से दरबार में नौकरी कर रहा हूँ। चौबीस बरस की आदत अब छूट नहीं सकती। मैंने कोशिश करके देख लिया। मुझसे न हो सकेगा। मैं क्या करूँ ? मुझे तो रतनपुर में कोई काम मिल जाता और यहाँ कोई इस जमाने का आदमी रखा जाता। जान मुसीबत में पड़ गई है। [घबरा उठता है]

चम्पा—गजराज, मैं तुम्हें कितना मानती हूँ, तुम नहीं जानते।

गजराज—[भर्राई हुई आवाज़ में] जानता क्यों नहीं ? उस बार मुझे बुखार आया था, आपने बराबर अपने हाथों से मुझे दवा पिलाई। वह नेकी मैं भूल नहीं सकता।

चम्पा—इतना ही नहीं जी ! तुम्हारे साथ रहने से बाबूजी

का मरना मुझे नहीं मालूम होता—मुझे मालूम होता है कि मैं उनके साथ...

[गजराज सिहर उठता है। उसका शरीर गनगना कर काँप जाता है। उसका मुख पहले तो लाल हो उठता है, फिर एकाएक पीला हो जाता है और घबराई हुई मुद्रा में बाहर निकल जाता है। चम्पा विस्मय से उसकी ओर देखती हुई उसके पीछे चल पड़ती है। गजराज सामने लॉन से होकर बढ़ता है। चम्पा झपटकर उसका हाथ पकड़ लेती है।]

चम्पा—तुम्हें हो क्या गया? इस तरह भागे कहाँ जा रहे हो?

गजराज—अभी नहीं। अभी नहीं। नहीं.. नहीं। बतला नहीं सकता। नहीं। छोड़ दीजिए। छोड़ दीजिए, चौबीस बरस के बाद। पाप का फल मिलता है...पिंड नहीं छूटता है। मरना था मुझे, मर गये ठाकुर साहब।

चम्पा—[डाँटकर] चुप रहो। क्या बक रहे हो? तबीअत अच्छी नहीं है, तो जाकर सो रहो। कौन कहता है कि तुमने पाप किया? मैंने तो यह कुछ नहीं कहा, और क्या बतलाना चाहते हो? यह भी मैं नहीं चाहती कि बतलाओ। रहते-रहते हो, विक्षुब्ध हो उठते हो।

गजराज—[सँभल कर] मुझसे कुछ पूछेंगी नहीं न?

चम्पा—मैं नहीं समझती।

गजराज—कह दीजिए कि नहीं पूछेंगी।

चम्पा—सावधान होकर विचार करो, बिना पूछे कैसे चलेगा?

गजराज—बस, इस समय मैं जो कहूँ, सुन लीजिए। आगे कुछ न पूछिए। मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

—— सुनो।

गजराज—मुझसे ठाकुर साहब और दुलहिन जी के बारे में कोई बात न कहा करें।

चम्पा—दुलहिन कौन ? अम्मा ?

गजराज—हाँ...वही...वही। उन्हीं के बारे में...उन्हीं के।

चम्पा—क्यों ?

गजराज—इसी का जवाब तो मैं नहीं दे सकता और इसीलिए भाग रहा हूँ, जिसमें कि फिर वह अवसर न पड़े।

चम्पा—हूँ...उनके मरने का दुःख तुम्हें इतना अधिक है कि तुम उनकी चर्चा भी नहीं सुन सकते ? लेकिन संसार भावुक नहीं है गजराज !

गजराज—संसार के बारे में भी मैं बहुत नहीं जानता। और उनके मरने का भी मुझे दुःख नहीं। मरना तो सबको है। उससे तो कोई बचता नहीं। उनके मरने का तो मुझे सुख है, दुःख नहीं। लेकिन...

चम्पा—लेकिन हाँ · [उसकी ओर देखने लगती है]

गजराज—मालिक अगर डूब मरे तो वह पाप मेरे ही सिर...

चम्पा—मालिक कौन...दीवान साहब ? [सिर हिलाकर 'हाँ' का संकेत करता है] अच्छा तो अगर वह डूब मरे तो उसका पाप तुम्हारे सरकार के सिर...तुम्हारे क्यों ?

गजराज—यही तो . मेरे ही सिर...मैं जानता हूँ। कह नहीं सकता। बस दो घड़ी में सब कुछ...चौबीस बरस बीत गये, लेकिन यह आग न बुझी; अब तो मेरे मरने ही पर...[चम्पा की ओर देखकर] जाओ रानी ! मुझे छोड़ दो...तुमको अब वह बात मालूम नहीं होगी।

चम्पा—लेकिन मैं तो तुमसे कुछ पूछती भी नहीं। इस तरह की बातों से तुम मेरी उत्सुकता बढ़ा रहे हो. लेकिन बतलाना नहीं चाहते।

मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है गजराज! [उदास होकर] मेरा दुःख भी तुम जानते हो। उस पर भी तुम मेरे साथ इतने कठोर······

गजराज—तुम्हारा दुख तो मैं खूब जानता हूँ। लेकिन उसका भी कारण मैं ही हूँ। मुझको दुःख है, तुमको दुःख है, सरकार को दुःख है; और अगर नरेन्द्र बाबू और मालिक जीते हों, तो उन लोगों को भी दुःख है, एक साथ इतने आदमियों को दुःख है, और सबके दुःख का कारण मैं हूँ······मैं [उत्तेजित होकर सड़क की ओर बढ़ता है]

चम्पा—कहाँ जा रहे हो? हे ईश्वर! नहीं सुनते? कह देती हूँ, सिर पटक दूँगी। पटक दूँगी सिर। सुनो गजराज!

गजराज—[लौटकर] कहिए। मैं अब ठहर नहीं सकता।

चम्पा—कहाँ जाओगे [उसका हाथ पकड़ लेती है]

गजराज—जहाँ भाग्य ले जाय।

चम्पा—क्यों?

गजराज—आप लोगों के साथ रहना ठीक नहीं। अभी तो दम है! मालिक की तरह बुढ़ापे में अगर जाना पड़ा, तो कहीं-न-कहीं रास्ते ही में कुत्ते-गीदड़ का पेट भरना होगा।

चम्पा—ओह! तो तुम इसीलिए आज उद्विग्न हो और सब के दुःख का कारण बन रहे हो? [उसके मुँह की ओर ध्यान से देखने लगती है]

गजराज—इसीलिए नहीं। मैंने चौबीस बरस हुए, पाप किया था। उसीका यह सब फल है। चौबीस बरस से मैं दुनिया को धोखे में डाले हुए हूँ, और अपने आप भी धोखे में पड़ा हूँ।

चम्पा—ओह! तुम्हारी बात समझ में न आयेगी। खैर, वे गये कहाँ?

गजराज—स्वामीजी के साथ, शायद नदी-किनारे······

चम्पा—और तुम तमाशा देखते रहे ?

गजराज—तमाशा क्या ?

चम्पा—स्वामीजी कौन हैं ? कहा नहीं जा सकता। अगर किसी तरह का धोखा करें ?

गजराज—स्वामीजी धोखा करें ?

चम्पा—क्यों तुम अभी अपने पाप में इतना विक्षुब्ध हो ? स्वामीजी कोई शत्रु हों ? बड़ी रानी के मायके के हों ?

गजराज—[कुछ सोचकर] हाँ······हो सकता है। आदमी कब क्या नहीं कर देगा, कहा नहीं जा सकता। लेकिन बड़ी रानी क्या सरकार की बुराई करायेंगी ? कभी नहीं। और फिर दुनिया विश्वास पर टिकी है। चलूँ बिस्तर लगा दूँ।

[प्रस्थान]

[चम्पा वहीं हरी दूब पर इधर-उधर टहलने लगती है। नरेन्द्र सड़क की ओर से प्रवेश करता है। चम्पा को वहाँ टहलते देखकर क्षण भर रुक जाता है। थोड़ी देर के बाद मुँह से सीटी का स्वर निकालने लगता है। चम्पा का ध्यान उसकी ओर आकर्षित होता है। चाँदनी में उसकी आकृति साफ़ नहीं देख पड़ती। चम्पा ध्यान से उसकी ओर देखती हुई चुपचाप खड़ी रहती है। नरेन्द्र लौटकर फिर सड़क पर निकल जाता है।

गजराज इस समय तक कमरे में दो पलँग बिछा कर दोनों पर मस-हरी लगा देता है। एक पलँग उस दरवाजा के पास बिछा है, जिससे होकर बँगले के भीतरी हिस्से और ऊपर की तह में जाने का रास्ता है, दूसरा पलँग उससे थोड़ी दूर कमरे के बीच में बिछा हुआ है। गजराज कमरे के दरवाजे लगाकर चम्पा के पास आता है।

गजराज—जाइए न छत पर, अब ठंडा हो गया होगा।

चम्पा—और यहाँ ?

गजराज—यहाँ कोई बैठने की जगह नहीं है। और शायद अब स्वामीजी आ जायँ।

चम्पा—तुम जानते हो, मैं पर्दा तो करती नहीं, और आज शाम को टहलने नहीं गई, इस तरह वह काम भी हो जायगा। और इसके अतिरिक्त मैं स्वामीजी से कुछ बातें भी करना चाहती हूँ।

गजराज—स्वामीजी से बातें? [विस्मय के स्वर में] ऐसा क्या?

चम्पा—हाँ कहते चलो [गंभीर होकर] चुप क्यों हो गये? कहो न।

गजराज—नहीं, यह तो अच्छा नहीं होगा। रानी होकर साधू-संन्यासी से बातें करना—

चम्पा—गजराज!

गजराज—कहिए न?

चम्पा—तुम किस पर सन्देह करते हो—रानी पर या संन्यासी पर? बोलो!

गजराज—मुझे अच्छा नहीं लगता, और मैं यह होने भी न दूँगा।

चम्पा—क्यों? इसमें बुराई क्या है?

गजराज—स्वामी लोग स्त्रियों से बातें नहीं करते—उनकी ओर देखते नहीं।

चम्पा—स्त्रियाँ बाघिन होती हैं क्या? या नागिन होती हैं जो कि स्वामी लोगों को खा जाती हैं या डँस लेती हैं? यह तुम्हारा अपराध नहीं है गजराज! ऐसी ही पुरुष-जाति है! पुरुष का काम है स्त्री का अविश्वास करना और उसके हृदय को ठोकर मारकर अपमान और लांछन से भर देना।

[शत्रुसूदन का प्रवेश]

शत्रुसूदन—कैसा अपमान और लांछन! [सूखी आँखों से चम्पा को देखने लगता है]

चम्पा—[दो डग आगे बढ़कर] पुरुष का सबसे बड़ा पौरुष और गुण—स्त्री का अविश्वास करना, उसे सदैव सन्देह की दृष्टि से देखना, उसके आचरण पर पहरा बैठाना और अन्त में अपमान और लांछन से उसके हृदय को चूर-चूर कर देना।

[गजराज का प्रस्थान]

शत्रुसूदन—यह सब तुम गजराज के सामने कह जाती हो। तुम्हें लज्जा नहीं मालूम होती ?

चम्पा—ज्वार के समय समुद्र की मर्यादा नहीं रहती। वह उफन कर ऊपर की ओर बढ़ता है। लोग कहते हैं, चन्द्रमा को छूने चला है।

शत्रुसूदन—अच्छा······

चम्पा—स्त्री का जन्म हुआ था पुरुष की धरोहर—उसका विष सुरक्षित रखने के लिए। अन्यथा वह अपने ही विष से जल मरता। जल मरता अपने ही विष से।

शत्रुसूदन—अगर ऐसा नहीं होता तब ?

चम्पा—स्त्री अपना पंख फैलाकर आकाश में उड़ती होती। [गंभीर होकर] उड़ती होती।

शत्रुसूदन—[उसके कंधे पर हाथ रखकर] किससे यह सब कह रही हो ?

चम्पा—अपने पति से, अपने मालिक से, अपने ईश्वर से, अपने शिव से, अपने ब्रह्मा से। जो मेरा है और जिसकी मैं हूँ, उससे ! मैं स्वामीजी से कुछ बातें करूँगी।

शत्रुसूदन—किस विषय की ?

चम्पा—अपने विषय की। मैं उनसे सम्मोहन मंत्र सीखूँगी।

शत्रुसूदन—मारण और उच्चाटन नहीं ?

चम्पा—वह तो सीख चुकी हूँ। वह तो स्त्री के रक्त के साथ पैदा होता है।

नौकरी करते। अब तो कहीं दस बीघा खेत मिल जाय और एक जोड़ी बैल! दस-बीस बरस की और जिन्दगी है, बीत जायगी।

शत्रुसूदन—मालूम होता है, दीवान साहब के चले जाने के कारण तुम यह तमाशा खड़ा कर रहे हो।

गजराज—नहीं सरकार, मालिक साठ वर्ष से नौकरी करते रहे और मुझे चालीस बरस हुआ। मेरी आँखों के सामने एक-एक दिन आये और निकल गये। जिस दिन दरबार में पहले-पहल हाज़िर हुआ था—बारह बरस का था। लेकिन ऐसा मालूम हो रहा है, जैसे अभी कल की बात है। मुझे मालूम होता है, जैसे सब कुछ देख रहा हूँ, आँख बन्द करने पर बड़े सरकार की सूरत सामने आ जाती है।

चम्पा—अच्छा हो, इन्हें छुट्टी दे दी जाय!

गजराज—हाँ सरकार, कोई नया आदमी आयेगा। समझदार होगा। इशारे पर काम करता रहेगा। दिन-रात में दस-बीस ग़लती रोज़ हो जाती है। कान से सुनाई भी कम पड़ रहा है और आँख की रोशनी अब जवाब दे रही है।

शत्रुसूदन—अच्छा, तुम जाओगे कहाँ?

गजराज—[कुछ सोचकर] गाँव पर।

शत्रुसूदन—वहाँ तुम्हारा कोई है?

गजराज—[सिर हिलाकर] है तो कोई नहीं। जब से नौकरी की, कभी वहाँ गया भी नहीं। घर भी, बहुत दिन हुए, मरम्मत न होने से गिर पड़ा।

शत्रुसूदन—तब कहाँ जाओगे? किसके घर?

गजराज—दीवारें गिर पड़ी होंगी। ज़मीन ऊँची हो गई होगी न। वहीं एक झोपड़ी डालूँगा। गाँववालों से सरपत और बाँस माँग लूँगा। दिन डूब जाने पर अँधेरा होगा। मैं झोपड़ी के

दरवाज़े पर बाहर चारपाई बिछाकर कहानी कहूँगा। लोग सुनेंगे। मेरी कहानी तो सरकार भी सुन चुके हैं और तारीफ़ कर चुके हैं।

शत्रुसूदन—और मरने पर क्या होगा गजराज?

गजराज—मरने पर चाहे जो हो सरकार! बिरादरीवाले दया करेंगे—फूँक देंगे या फेंक देंगे। जब तक घट में प्राण हैं, चाहे कोई रोये या हँसे। उसके बाद तो सरकार, सबकी गति एक है। राजा हो या रंक, अमीर हो या ग़रीब, उस दिन तो सब बराबर हैं।

शत्रुसूदन—दीवान साहब भी चले गये गजराज! तुम भी जाओगे?

गजराज—नये नौकर मिलेंगे सरकार······

शत्रुसूदन—तुमको हमारी चिन्ता न होगी?

गजराज—होगी तो मैं भगवान् से आपकी भलाई के लिए मनाया करूँगा। साल में दशमी को भवानी की पूजा में आकर सरकार का दर्शन करूँगा।

शत्रुसूदन—नहीं। यह नहीं हो सकता। तुम्हारे न रहने पर तो मेरी हालत परकटे बाज की हो जायगी। जब से होश सँभाला, तुम्हारे साथ हूँ। बचपन में खेलने भी गया तो तुम्हारे ही साथ। जब तक पढ़ता रहा, तुम बराबर साथ रहे। कालेज के दिनों में मैं जिस किसी भी कमरे में बैठता था, तुम बाहर उसके दरवाज़े की बग़ल में बैठे रहते थे। मैंने कई बार देखा था तुम्हें खिड़की से अपनी ओर देखते हुए। तुम बराबर मेरी चारपाई के पास नीचे फ़र्श पर सोते रहे हो। जब कभी नींद खुली, तुम्हें जागते ही पाया। मेरे बारे में तुमने आज तक कभी किसी दूसरे का विश्वास नहीं किया। इससे बढ़कर अपने सगे लड़के का भी········

गजराज—दुहाई सरकार की ! [दोनों हाथ जोड़कर] चुप रहिए। अब कुछ न कहिए। मालूम हो रहा है, जैसे छाती फट रही है। [ज़मीन पर बैठकर शत्रुसूदन के पैरों पर अपना सिर रखकर सिसक-सिसककर रोने लगता है और दोनों के बीच में कसकर उनकी टाँगें पकड़ लेता है। शत्रुसूदन भी वहीं बैठकर गजराज का सिर दोनों हाथों में पकड़कर उठाना चाहते हैं।]

चम्पा—[शत्रुसूदन की बगल में बैठकर] आपके जाने के बाद से ही इनकी तबीअत ऐसी ही है। इसी तरह विह्वित होकर मुझसे भी न मालूम क्या कहते रहे हैं। चौबीस वर्ष पहले इन्होंने कोई पाप किया था। इतने दिनों बाद इनके मन में पश्चात्ताप पैदा हो रहा है! अभी कहते रहे हैं, दीवान साहब अगर डूब मरेंगे तो उसका पाप इन्हीं के सिर लगेगा। मेरे दुःख का, आपके दुःख का, दीवान साहब के दुःख का और ··सबके दुःख का यही कारण है। मुझे तो इनकी यह हालत देखकर बड़ी घबराहट हो रही है।

शत्रुसूदन—[उसको उठाने की कोशिश करते हुए] गजराज! गजराज! गजराज! अरे मालूम हो रहा है, इसे मूर्च्छा आई! [अपना पैर छुड़ाने का प्रयत्न करते हुए] इसे बहुत दिनों से कोई दुःख सता रहा है। ऐसा कई बार अनुभव हुआ। मैंने पूछा भी, लेकिन हँसकर इधर-उधर करता रहा! मैं इसकी सरलता पर इतना मुग्ध था कि कभी मैंने बहुत ज़ोर देकर पूछा भी नहीं। मनुष्य का दुःख जब असह्य हो उठता है······[चम्पा की ओर एकाएक देखने लगता है]

चम्पा—इस तरह क्यों देख रहे हैं?

शत्रुसूदन—यही कि जब मनुष्य का दुःख असह्य हो उठता है।

चम्पा—हाँ, मैं जानती हूँ—"दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना।"

शत्रुसूदन—मशीन की तरह काम करता था। मैं समझता था, बूढ़े के पास हृदय नहीं है। जितना बड़ा इसका हृदय था उतना ही बड़ा इसका दुःख भी होगा। इसका दुःख भी एक समस्या है। न तो इसकी शादी हुई और न लड़के-बच्चे। अपने जीवन की इस स्वतन्त्रता से सदैव सन्तुष्ट रहता था। यह भी किसी अभाव का अनुभव करता है अथवा इसके भीतर भी कोई घाव छिपा पड़ा है। आज तक मुझे कभी इसकी धारणा भी नहीं हुई।

चम्पा—गाने के स्वर में—

कितनी दूर विकल चलकर ये, मेरे अश्रु अधीर।
आज चेतना-हीन गिर रहे, किस तटिनी के तीर॥

[गजराज के सिर पर धीरे-धीरे अपना हाथ फेरने लगती है] इसीलिये तो मैं बराबर कहती हूँ कि मनुष्य के हृदय का रहस्य समझा नहीं जा सकता। ऊपरी टाट-बाट और बोली-बान सुनकर लोग भीतर का पता लगाना चाहते हैं। [अपनी छाती पर दोनों हाथ रखकर] इस आठ अंगुल की जगह में एक समुद्र भरा पड़ा है—कोई जानता ही नहीं।

शत्रुसूदन—[अपने दोनों हाथों की चार-चार उँगलियाँ मिलाकर चम्पा के हृदय पर रखकर] हाँ, आठ ही अंगुल तो है। [चम्पा की ओर देखने लगता है]

चम्पा—लेकिन उतने ही में एक समुद्र भरा पड़ा है!

शत्रुसूदन—इसीलिए तो इतना भयानक है। [गजराज का सिर पकड़कर उठाना चाहता है] इसे यों होश नहीं आयेगा। यहीं बैठी रहो... [पुकारने के स्वर में] सुदिनवाँ! रमुवाँ!

[बँगले की ओर एक साथ कई आवाज़ें होती हैं] हाँ, आया सरकार ! फ़ौजी पोशाकवाले दो सिपाही बन्दूक में संगीन लगाये आगे बढ़ते हैं।

शत्रुसूदन—[चम्पा की ओर देखकर] लेकिन इन सबका आना यहाँ ठीक होगा। [गजराज की ओर देखकर] पता नहीं, इसके मन में क्या हो ? [आगे बढ़ते हुए] स्मेलिंग साल्ट और एक्लिप्टस…हाँ नहीं, तुम लोग वहीं रहो। कोई ज़रूरत नहीं। सोफ़र से कह दो, मोटर ठीक रक्खे। [चम्पा का हाथ पकड़कर] तुम यहीं रहो। शायद स्मेलिंग साल्ट या एक्लिप्टस से कुछ फायदा हो। अभी आया।

चम्पा—अकेले डर लगेगा।

शत्रुसूदन—ज्वालामुखी फूट पड़ने पर भी डर ?

चम्पा—सब कुछ होते हुए भी स्त्री स्त्री रहेगी। मंच पर व्याख्यान देते समय तो वह निशुम्भ पुरुष के लिए चंडी बन जायेगी—उसका हृदय फाड़कर उसका रक्त पीना चाहेगी; लेकिन जब व्याख्यान समाप्त होने पर मोटर में बैठेगी तो फिर वही रति, रंभा, उर्वशी, तिलोत्तमा—वही ममता और मोह की बेहोशी। स्त्री का मार्ग तो भक्ति और त्याग का है—ज्ञान और अपहरण का नहीं।

शत्रुसूदन—तब ?

चम्पा—जाइए, लेकिन देर न कीजिएगा।

शत्रुसूदन—बेहोश गजराज भी ज़रूरत पड़ने पर तुम्हारी रक्षा में बाघ बन जायेगा। भूत-प्रेत तो तुम नहीं मानतीं ? अभी दो घंटे रात बीती होगी।

चम्पा—मुझे इनकी चिंता है; और डर—

शत्रुसूदन—ऐसा बहुत होता है; उसकी चिंता क्या ?

[शत्रुसूदन का प्रस्थान ।]

[चम्पा गजराज के पास बैठकर उसके शरीर पर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगती है। कभी उसकी छाती पर हाथ रखती है, कभी उसके सिर पर । कभी उसका हाथ पकड़ कर उसकी उँगलियाँ खींचने लगती है ।]

नरेन्द्र का प्रवेश । वह धीरे-धीरे गंभीर चाल से चलकर वहाँ पहुँच जाता है जहाँ गजराज मूर्छित पड़ा है । चम्पा को उसके आने का पता नहीं चलता । वह उसी तरह गजराज की देह पर इधर-उधर हाथ रखकर उसे सचेत कर देना चाहती है। नरेन्द्र बड़ी देर तक ध्यान से यह सब देखता रहता है। नरेन्द्र, गजराज और चम्पा के चारों ओर घूमकर, कई जगह खड़ा होता है। चम्पा उसी तरह तन्मय होकर गजराज के शरीर के साथ खिलवाड़ कर रही है। नरेन्द्र, चम्पा के पीछे खड़ा होकर, चुपचाप आकाश की ओर देखने लगता है। निर्मल आकाश में चन्द्रमा, तारों के असंख्य फूल। पहले तो उसके ओठ पर मुस्कराहट आती है; लेकिन क्षण-भर में ही उसकी मुद्रा बहुत गभीर हो उठती है। मुट्ठी बाँधकर दोनों हाथ कमर पर रख देता है। दोनों बाँहें त्रिभुज बनाती हुई; दोनों बगलों में अलफी की चौड़ी मुहरी के भीतर, उड़ने के समय चील के डैने की तरह, देख पड़ती हैं। बाएँ पैर पर जोर देकर नरेन्द्र बाईं ओर झुककर खड़ा होता है।

गजराज की साँस के साथ जैसे कुछ कराहने की-सी ध्वनि निकलती है। चम्पा जैसे कुछ सचेत होकर तेजी के साथ गजराज के सिर पर हाथ फेरने लगती है। नरेन्द्र वहीं से झुककर गजराज का ललाट दायें हाथ की उँगलियों से छू देता है। उसकी केहुनी से ऊपर का हिस्सा चम्पा के जूड़े से छू जाता है, और गजराज के सिर पर चम्पा के तेजी से घूमते हुए हाथ में नरेन्द्र की उँगलियाँ आ जाती हैं। चम्पा घबरा कर

ती है—उसके सिर के धक्के से नरेन्द्र का झुका हुआ हाथ ऊपर को उठ
ता है। चम्पा तेजी से बँगले की ओर बढ़ती है।]
नरेन्द्र—डरो न, मैं हूँ। इसे क्या हो गया ?
चम्पा—[घूमकर नरेन्द्र की ओर देखती हुई] मूर्च्छा आ गई है।
आप ही स्वामीजी हैं जो शाम को आए थे ?
नरेन्द्र—तुम्हें देख नहीं पड़ता। रानी होने पर तो दृष्टि और तीव्र
होनी चाहिए।
चम्पा—स्वामीजी, आप विरक्त हैं। दुनिया की नजर और है,
और आपकी और। रानी हो जाने पर तो अन्धी हो जाना पड़ता है।
आँखें चश्मा हो जाती हैं।
नरेन्द्र—इसे मूर्च्छा क्यों आ गई ?
चम्पा—कौन जाने ? चौबीस वर्ष पहले इन्होंने कोई पाप किया
था। आज दीवान साहब के निराश होकर चले जाने पर...उस पाप
की स्मृति इनके मन में जाग उठी है, पश्चात्ताप की आग जल उठी
है। लेकिन यह पता नहीं चलता कि कैसा पाप है,
क्या है।
नरेन्द्र—हूँ...[चम्पा की ओर एकटक देखते हुए] अपनी प्रजा का
प्रेम आपके हृदय में है। होना ही चाहिए।
[चम्पा चुपचाप ध्यान से स्वामीजी की ओर देखती रहती है। स्वामी-
जी के मुँह पर चन्द्रमा की रोशनी पड़ रही है, उधर चम्पा के पीछे चन्द्रमा
है] इतने ध्यान से क्या देख रही हैं ? [चम्पा कुछ बोलती नहीं, चुप-
चाप नरेन्द्र की ओर देखती रहती है। नरेन्द्र बाएँ हाथ की उँगलियों
से अपनी आँखें दबाकर थोड़ी देर तक खड़ा रहता है। चम्पा उसकी ओर
देखती ही रहती है।
चम्पा—आपका नाम क्या है स्वामीजी !
नरेन्द्र—[चम्पा की ओर देखते हुए] योगी अपना नाम नहीं

बतलाते रानी! वे किसी का शासन नहीं मानते—न राजा का, न रानी का।

चम्पा—और अगर अपराध करें?

नरेन्द्र—योगी कभी-कभी अपने साथ अपराध कर बैठते हैं, प्रयोग के लिए—साधन के लिए। दूसरे किसी के साथ वे अपराध नहीं करते। [गजराज की ओर संकेत कर] इसने कैसा पाप किया था!

चम्पा—यह तो कोई नहीं जानता। इनका कहना है, चौबीस वर्ष पहले इन्होंने पाप किया था और इनके पाप से मैं दुखी हूँ, सरकार दुखी हैं, दीवान रघुवंशसिंह दुखी हैं और उनके लड़के —अगर वे इस समय कहीं जीवित हों तो—वे भी दुखी हैं।

नरेन्द्र—[उत्सुक होकर] किसके लड़के?

चम्पा—दीवान रघुवंशसिंह के।

नरेन्द्र—उनका नाम क्या था?

चम्पा—नरेन्द्र, हाँ [कुछ सोचकर] हाँ, यही नाम था।

नरेन्द्र—मालूम होता है, यह नाम आपके लिए बहुत अप्रिय है। नरेन्द्र—तीन अक्षर का नाम उच्चारण करना—आपकी जीभ लड़खड़ा उठी। कठिनता से किसी तरह इस नाम का उच्चारण आपसे हो सका। इतने जीव एक साथ दुखी हैं और इन सबके दुख का कारण यही [गजराज की ओर संकेत कर] यह बुड्ढा है। यही न?

नरेन्द्र—[जैसे सोचने की मुद्रा में] हूँ—तो मतलब यह कि अगर किसी तरह इसका दुःख मिटा दिया जाय, तो इन सब अभागों का दुःख मिट जायेगा। मिट जायेगा न [चम्पा की ओर देखने लगता है। चम्पा सिर नीचे कर जमीन की ओर देखने लगती है] इधर देखो रानी! एक साथ तुम्हारी इतनी प्रजा दुखी है।

चम्पा—तो मैं क्या करूँ स्वामिन्...!

नरेन्द्र—वही जो माता का काम है। अपने हृदय को विशाल करो, शीतल करो और इन अभागों को उसी में जगह दो।

चम्पा—आप कह क्या रहे हैं?

नरेन्द्र—कोई नई बात नहीं। तुम्हारा स्थान तो जगदम्बा का स्थान है।

चम्पा—तो आप छायावाद में बोल रहे हैं।

नरेन्द्र—छायावाद में तो साहित्य के रोगी बोलते हैं और धर्म के अन्धे। मैं तो राजयोगी हूँ—राजा हूँ। छायावाद मेरे लिए नहीं है। नरेन्द्र को आपने कभी देखा था या नहीं? (चम्पा सन्देह से उसकी ओर देखती है) हाँ, कहिए।

चम्पा—इसका उत्तर देना...यह जानकर आप क्या करेंगे?

नरेन्द्र—अच्छा तो आपने उसे देखा था। शायद आपसे उसका कुछ अधिक अनिष्ट भी हुआ। इसलिए उसके संबंध में आप असमंजस में पड़ी हैं। क्यों, है यही बात न?

चम्पा—(रूखे स्वर में) नहीं...

नरेन्द्र—लेकिन स्वर क्यों बदल गया? मेरी ओर इतने ध्यान से क्यों देख रही हैं। अगर मैं भी इसी तरह आपकी ओर देख लूँगा, तो आप बेहोश हो जायेंगी। मेरी आँखें आप सँभाल नहीं सकतीं—इस तरह न देखा कीजिए, खतरा है। मैं आपको सचेत कर देता हूँ।

चम्पा—हूँ, तब तो आप पूरे जादूगर हैं! योगी की सिद्धि तो आध्यात्मिक होती है, इस तरह की शारीरिक नहीं।

नरेन्द्र—देखता हूँ, आपकी जीभ बड़ी तेज है। जैसे योगी आपने अपनी गोद में खेलाया हो। श्रीमतीजी, कालेज का तर्क यहाँ काम नहीं करेगा। शब्दों का ज्ञान बहुत काम नहीं आता।

[गजराज के समीप जाकर उसके सिर पर, छाती पर, जाँघ पर, फिर पैर पर हाथ रखता है। चम्पा भी समीप जाकर देखने लगती है] इसके दोनों पैर एक में मिलाकर पकड़ो तो। [चम्पा गजराज के दोनों पैर मिलाकर दोनों हाथों से पकड़ती है। नरेन्द्र उसके दोनों हाथ पकड़कर कुछ आगे झुककर अपनी छाती पर रख लेता है] जोर से पकड़े रहना। अभी पैर बड़े जोरों से काँपने लगेंगे। छूटने न पायें। [नरेन्द्र गहरी साँस लेने लगता है। उसकी छाती साँस खींचने के समय आगे को निकल जाती है और उसके साथ-ही-साथ गजराज के दोनों हाथ आगे-पीछे होने लगते हैं]

स्ट्रेचर लिये हुए दो आदमियों के साथ शत्रुसूदन का प्रवेश। शत्रुसूदन यह सब देखकर अवाक् रह जाते हैं। उनके साथी स्ट्रेचर रखकर पीछे हटकर खड़े होते हैं। शत्रुसूदन चम्पा के पास आकर खड़े होते हैं।

चम्पा—[शत्रुसूदन की ओर देखकर] इसे पकड़िए। जैसे मेरा हाथ टूटा जा रहा है।

शत्रुसूदन ज्योंही अपने हाथ बढ़ाता है, नरेन्द्र हाथ हिलाकर 'नहीं' संकेत करता है। शत्रुसूदन चुपचाप खड़ा हो जाता है। गजराज के पैर थर-थर-थर काँपने लगते हैं; साथ-ही-साथ चम्पा के हाथ भी जोरों से हिलने लगते हैं। चम्पा नाक सिकोड़ लेती है, जैसे उसे बड़ी तकलीफ हो रही हो। नरेन्द्र जोर से साँस लेने लगता है। उसके सिर से पसीना चल कर सब ओर से मुँह पर बहकर टप-टप चूने लगता है। चम्पा उसकी ओर देखती है।

नरेन्द्र—बस छोड़ दो पैर [चंपा पैर छोड़ देती है। नरेन्द्र उसके हाथ छोड़ देता है, जो कि झटके के साथ पृथ्वी पर गिरते हैं।] गजराज! गजराज! [गजराज उठता है] गजराज!

गजराज—जी सरकार······

नरेन्द्र—कैसी तबीयत है?

गजराज—[छाती पर हाथ रखकर] बड़ी गर्मी मालूम हो
है।

नरेन्द्र—उठो, खड़े हो।

[गजराज उठकर खड़ा होता है]

नरेन्द्र—यहाँ आओ।

[गजराज उसके पास जाकर खड़ा होता है। नरेन्द्र उसकी छाती पर हाथ रखता है] यहाँ दर्द हो रहा है ?

गजराज—हाँ महाराज—

नरेन्द्र—यह दर्द तुम्हें कितने दिनों से है ?

[गजराज सिर नीचे की ओर कर चुपचाप खड़ा रहता है।]

शत्रुसूदन—गजराज! बतला दो। स्वामीजी पूछ रहे हैं।

चम्पा—शायद कुछ विचार कर रहे हैं।

शत्रुसूदन—तुम लोग स्ट्रेचर लेकर जाओ।

[उन दोनों आदमियों का स्ट्रेचर लेकर प्रस्थान]

नरेन्द्र—गजराज!

[गजराज उसी तरह सिर नीचे की ओर किये खड़ा रहता है।] हूँ, तो तुम अपनी बीमारी से प्रेम करते हो। उसे छोड़ नहीं सकते।

गजराज—[नरेन्द्र की ओर देखकर] महाराज, आज मुझे छोड़ दीजिए। किसी दूसरे दिन कह दूँगा।

नरेन्द्र—दूसरे दिन नहीं जी, आज मैं तुम्हारी बीमारी निकाल दूँगा।

गजराज—तब रहने दीजिए मुझे इसी तरह।

नरेन्द्र—लेकिन यह नहीं हो सकता। [चम्पा की ओर देखकर] योगी रोग नहीं छोड़ सकता। योगी तो केवल संसार की व्याधि दूर करता है। यही उसका काम है। [दायें हाथ की मुट्ठी बाँधकर हिलाते हुए] तुम्हारा दुख मेरा दुःख है, सारे संसार

का दुःख है। मैं उसे रहने नहीं दूँगा। इसीलिए पूछ रहा हूँ, तुम्हारा रोग कितना पुराना है? उसके अनुसार उपचार करूँगा! बोलो।

गजराज—मेरा रोग बहुत पुराना है महराज! उसके लिए कोई दवा है ही नहीं।

नरेन्द्र—मैं फिर कहता हूँ, तुम अपने रोग से प्रेम कर रहे हो। आत्मा के ऊपर प्रकृति, चेतन के ऊपर जड़।

गजराज—नहीं समझा [गहरी साँस लेता है]

नरेन्द्र—तब तुम्हें वह भी समझाना पड़ेगा। आत्मा का रोग मनुष्य नहीं समझता; उसके लिए भी शारीरिक औषधियाँ खाता है। गजराज, मैं तुम्हारी व्याधि निकालूँगा।

गजराज—जो तबीयत हो, कीजिए महाराज। मुझसे कुछ न पूछिए।

शत्रुसूदन—क्यों गजराज? स्वामीजी तुम्हारे ही लिए...

गजराज—ठीक है सरकार, मेरे ही लिए। लेकिन मैं कुछ न बताऊँगा।

चम्पा—तो इसी तरह बीमार रहोगे?

गजराज—इसी तरह तो बहुत दिनों से हूँ। वैसे ही रहूँगा। [नरेन्द्र की ओर हाथ जोड़कर] रहने दीजिए! महाराज! मुझे इसी तरह।

नरेन्द्र—रोगी का यही तो स्वभाव है। रोग पड़ा रहे, प्राण चला जाय; लेकिन रोग निकालने में कोई कष्ट न उठाना पड़े। यह सबका स्वभाव है गजराज, तुम्हारा ही नहीं। [शत्रुसूदन और चम्पा की ओर देखकर] ये लोग भी रोगी हैं। लेकिन इन लोगों के लिए अभी समय...लेकिन तुम्हारे लिए, तुम्हारा समय तो अब आ गया। अगर अब नहीं तो कभी नहीं। चले जाने पर मैं फिर कभी यहाँ आऊँगा या नहीं, कौन

जाने ? इसलिए कम-से-कम तुम्हें तो इसी समय स्वस्थ करना है। इधर देखो मेरी ओर...देखो। [गजराज नरेन्द्र की ओर देखता रहता है] इधर देखो, मेरी आँख की ओर, मेरी आँख की ओर [थोड़ी देर तक दोनों एक दूसरे की ओर देखते रहते हैं। चम्पा शत्रुसूदन के पास जाकर खड़ी होती है] कैसा मालूम हो रहा है गजराज ?

गजराज—आँख में पानी आ रहा है महाराज !

नरेन्द्र—[पृथ्वी की ओर संकेत कर] अच्छा, तुम यहाँ लेट जाओ। मुँह सीधे आकाश की ओर रहे।

गजराज—[अनिच्छापूर्वक] महाराज !

शत्रुसूदन—हाँ, हाँ, लेट जाओ। डरते क्यों हो ?

[गजराज आकाश की ओर देखता आ लेट रहता है। नरेन्द्र इसके दोनों पैरों को मिलाकर और दोनों हाथों को बगलों में सीधा कमर से लगाकर रख देता है।]

नरेन्द्र—चन्द्रमा की ओर देख रहे हो ?

गजराज—हाँ।

[चम्पा बड़े ध्यान से गजराज की ओर देखने लगती है। शत्रुसूदन अपना हाथ चम्पा के कंधे पर रख देता है।]

नरेन्द्र—चन्द्रमा की ओर नहीं, मेरी ओर देखो। मेरी आँखें साफ देख पड़ रही हैं न ?

गजराज—जी...

नरेन्द्र—इसी तरह देखते रहो।

गजराज—कब तक ?

नरेन्द्र—जब तक देख सको !

गजराज—इस तरह तो रात-भर देखता रह जाऊँगा।

नरेन्द्र—[हँसते हुए] रात-भर देख सकोगे ?

गजराज—हाँ स्वामीजी, आप देखिए।

नरेन्द्र—[झुककर उसके सिर पर हाथ रखता है] तुम वीर हो, इसमें संदेह नहीं। आँख बन्द करो तो अब।

[गजराज आँखें बन्द करता है। नरेन्द्र उसके चारों ओर दो-तीन चार घूमता है। फिर रुककर दोनों हाथों की उँगलियों को तेजी से हिलाकर अपने हाथ उसके सिर की ओर से उसके पैर की ओर ले जाता है। उसका हाथ उसके शरीर से केवल चार अंगुल के अंतर पर ऊपर रहता है। कई बार उँगलियाँ हिलाकर अपने हाथ उसके सिर की ओर से पैर की ओर ले जाता है। मालूम होता है, जैसे कोई चीज़ उसके सिर से पैर की ओर उतार रहा है। गजराज की आँखें दोनों हाथों से छूकर] सो जाओ! खूब गाढ़ी नींद में सो जाओ। गाढ़ी नींद, गाढ़ी नींद। गजराज! गजराज!

गजराज—[धीमे स्वर में] हाँ।

नरेन्द्र—नींद आ रही है न?

गजराज—[और भी धीमे स्वर में] हाँ।

[नरेन्द्र फिर अपने दोनों हाथों की उँगलियों को हिलाकर उसके सिर की ओर से पैर की ओर ले जाता है। गजराज गहरी साँस लेने लगता है, जिससे मालूम होता है कि वह सो गया। नरेन्द्र दायें हाथ से उसका सिर, छाती, जाँघ और पैर छूता है। थोड़ी देर तक झुककर उसके मुँह की ओर देखता है। गजराज का सिर, जो सीधे ऊपर था; एक ओर बगल में झुक जाता है]

नरेन्द्र—गजराज! गजराज! गजराज! सो गया।

चम्पा—सो गये?

नरेन्द्र—हाँ, ऐसी गहरी नींद इसे शायद बहुत दिनों के बाद आई होगी।

चम्पा—देखूँ, सो गया है, [गजराज का हाथ पकड़ कर खींचती है।]

नरेन्द्र—इसकी साँस से नहीं मालूम होता। इस समय तो सूई चुभाने पर भी इसकी नींद नहीं खुलेगी!

शत्रुसूदन—[समीप जाकर] आपने इन्हें बिलकुल बेहोश कर दिया!

नरेन्द्र—बेहोश नहीं कर दिया जी—सुला दिया। छोड़ दो, रात-भर यहीं सोता रहे।

शत्रुसूदन—और अगर मर जाय!

नरेन्द्र—मर जाय क्यों?

शत्रुसूदन—शायद फिर होश न हो!

नरेन्द्र—लेकिन क्यों?

चम्पा—क्यों नहीं—

'जिन या वेदन निरमई, भला करेगो सोय!'

शत्रुसूदन—तुम्हारा संगीत और कवित्व ऐसे ही अवसर पर निकलता है।

नरेन्द्र—लेकिन उसके लिए उपयुक्त अवसर भी यही है। दुःखी जीव [गजराज की ओर संकेत कर] अपना दुःख भूलकर असीम के साथ एक हो गया है। यही तो अवसर है संगीत और कवित्व का'''अगर इनका उद्देश्य सचेत करना हो तो' आत्मा को मुक्त करना हो तो; लेकिन अगर इनका अभिप्राय शराब की मस्ती लानी हो, तब तो फिर बात ही दूसरी है।

शत्रुसूदन—अब क्या होगा?

नरेन्द्र—बच्चे की तरह घबड़ा क्यों रहे हो? मेरी इससे कोई शत्रुता तो है नहीं कि मैं इसे मार डालूँगा। और फिर मार डालना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। इसकी बीमारी कैसे दूर की जाय? इसमें तो सन्देह नहीं कि इसने कभी कोई-न-कोई बुराई की। उसका पश्चात्ताप इसे अब भी होता है। कैसी

बुराई की यह तो यह बतलायेगा नहीं, और जब तक कि बात प्रकट नहीं हो जाती…इसका पश्चात्ताप कम भी नहीं होगा।

चम्पा—यह तो नहीं बतलावेंगे।

नरेन्द्र—[चम्पा की ओर देखकर] मैं नहीं पूछता हूँ। देखो, अभी बतलाता है या नहीं। मनुष्य अपने हृदय को कितना ही छिपाकर रक्खे, मेरी दृष्टि उसके भीतर चली जाएगी। कोई मनुष्य हो। कहो मैं तुम्हारे हृदय का चित्र रख दूँ।

चम्पा—लेकिन वह मिलेगा कहाँ?

नरेन्द्र—तुम्हारे हृदय में मिलेगा। उसी में से निकाल लूँगा।

चम्पा—मेरे हृदय में से?

नरेन्द्र—हाँ-हाँ, तुम्हारे हृदय में से; और केवल तुम्हारे ही नहीं, हर किसी के हृदय में से। तुम जितना समझ रही हो मेरे लिए तुम्हारा हृदय उतना सुरक्षित और गुप्त नहीं है। [गजराज की ओर संकेत कर] देखो इसका हृदय। देखती हो, तुम्हारा या किसी भी स्त्री का हृदय इससे बड़ा हो नहीं सकता। जब यह मेरे वश में आ गया, तो तुम्हारी क्या बात! [शत्रुसूदन की ओर ध्यान से देखने लगता है] क्यों राजकुमार, मैंने ठीक कहा या नहीं?

शत्रुसूदन—[जैसे गहरे विचार में] हो सकता है।

नरेन्द्र—[इतने गंभीर होकर नहीं लड़के! तुम्हें तो इस पर हँस पड़ना चाहिए। पुरुष का हृदय स्त्री के हृदय से सदैव बलवान होता है। स्त्री किस बात पर दम्भ करे। इस जमाने में स्त्री पुरुष की प्रतिहिंसा में खड़ी हो रही है। प्रकृति का बदला, वह लेना चाहती है पुरुष से। उसकी आँखों में अधिक आँसू है—इसलिए कि उसके हृदय में अधिक गर्मी है—इसमें पुरुष का क्या अपराध?]

चम्पा—स्वामीजी का चले तो संसार से स्त्रियों का निर्वासन

शत्रुसूदन—[चम्पा की ओर देखकर [चुप रहो ! [उसकी ओर रुकर देखने लगता है]

नरेन्द्र—इस तरह का दबाव सदैव हानिकर होता है राजकुमार ! बात तो इन्होंने बिलकुल सच्ची कही । सचाई को दबाना ही तो पाप है । पाप की परिभाषा वही है जो असत्य की है ।

[गजराज के सिर पर हाथ रखकर] गजराज ! गजराज ! गजराज !

गजराज—जी···

नरेन्द्र—देख रहे हो ?

[दीवान रघुवंशसिंह उसी वेश में खुली तलवार लेकर प्रवेश करते हैं और जहाँ ये लोग हैं, उससे दस कदम पीछे चुपचाप खड़े हो जाते हैं ।]

गजराज—हाँ, देख रहा हूँ ।

चम्पा—होश हो गया क्या ?

नरेन्द्र—जो होश बराबर रहता था वह बाहरी होश तो अभी होगा नहीं, जब तक मैं चाहूँगा नहीं, लेकिन यह भीतरी होश मैंने पैदा कर दिया है । मैं पूछता जाऊँगा और यह उत्तर देता जायेगा, और इस तरह मैं इसकी बीमारी······उसकी जड़ निकाल लूँगा । गजराज ? किसे देख रहे हो ?

गजराज—आपको ।

चम्पा—आँख तो बन्द है ।

नरेन्द्र—वह तो है ही !

चम्पा—तब देख कैसे रहे हैं ?

नरेन्द्र—वह बात इतनी सरल नहीं है कि बतलाई जा सके। चुपचाप सुनो । गजराज !

गजराज—जी···

नरेन्द्र—यहाँ और कौन-कौन लोग हैं ?

गजराज—स्वामीजी, रानी और मालिक !

नरेन्द्र—मालिक कौन जी ?

गजराज—दीवान रघुवंशसिंह।

नरेन्द्र—वह कहाँ हैं जी ? वह तो यहाँ नहीं हैं।

गजराज—हैं तो ?

नरेन्द्र—कहाँ हैं। ध्यान से देखो।

गजराज—देख लिया। अपने पीछे देखिए !

नरेन्द्र, शत्रुसूदन, चम्पा, सब उसी ओर देखते हैं। रघुवंशसिंह आगे बढ़ते हैं।

रघुवंशसिंह—राजकुमार, मैं यह तलवार लिये गया। यह रतनपुर के दीवान की तलवार है। ले लो; जिसे गद्दी देना, यह तलवार भी दे देना। बड़े सरकार ने दी थी; तुम ले लो। [सिर से पगड़ी उतारकर] और इसे भी [तलवार और पगड़ी शत्रुसूदन के पास जमीन पर रख देता है। फिर गजराज के पास खड़ा होकर] गजराज ! गजराज !

नरेन्द्र—[रघुवंशसिंह को संकेत से मना कर] गजराज !

गजराज—जी…हाँ

नरेन्द्र—कैसी तबीयत है ?

गजराज—आसमान में उड़कर कहीं जा रहा हूँ। बड़ा अच्छा मालूम हो रहा है !

नरेन्द्र—अच्छा; यह बतला सकते हो—राजकुमार के पिता का नाम क्या था ?

गजराज—सुरेशसिंह।

नरेन्द्र—तुम्हारे कितने बच्चे हुए थे ?

गजराज—एक…

रघुवंश—हे भगवान ! इसकी तो शादी हुई ही नहीं !

नरेन्द्र—गजराज, तुम्हारी शादी हुई थी ?

गजराज—नहीं।

नरेन्द्र—तब तुम्हें बच्चा कहाँ से हुआ?

गजराज—एक लड़की हुई थी। दूसरे की स्त्री से। मेरा उससे बुरा सम्बन्ध हो गया।

नरेन्द्र—वह स्त्री अभी जीवित है?

गजराज—मर गई!

नरेन्द्र—और वह लड़की?

गजराज—वह तो है।

नरेन्द्र—कहाँ है वह इस समय!

गजराज—यही है। यही खड़ी है। यही चम्पा!

रघुवंश—झूठ कह रहा है!

[चम्पा और शत्रुसूदन एक दूसरे की ओर देखने लगते हैं।]

नरेन्द्र—तुम यह बतला सकते हो गजराज, कि जिस स्त्री से चम्पा पैदा हुई थी, उसकी शादी किससे हुई थी?

गजराज—ठाकुर विहारीसिंह से।

चम्पा—अब कुछ न पूछिये स्वामीजी, अब कुछ न पूछिए। नहीं नहीं, कुछ न पूछिए।

शत्रुसूदन—क्यों? जो सचाई है, खुल जाने दो। रोक क्यों रही हो?

चम्पा—हर्गिज नहीं, मैं सुनना नहीं चाहती।

शत्रुसूदन—नहीं सुनना चाहती, तो कान बन्द कर लो या यहां से चली जाओ।

नरेन्द्र—अच्छा, मैं अब इसे होश में लाता हूं। अब नहीं पूछूंगा। मैं तो इसके दुःख का कारण ढूँढ़ना चाहता था।

शत्रुसूदन—स्वामीजी, इसके दुःख का कारण यही है। आज ही घंटे-दो-घंटे पहले इसने [चम्पा की ओर संकेत कर] इससे कहा था कि मेरे, अपने, इसके, दीवान साहब के और

नरेन्द्र के दुःख का कारण यही है; इसी गजराज के पाप का फल हम सब लोगों को एक ही साथ उठाना पड़ रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि इसका यह कहना केवल इसी बात पर लागू हो सकता है। शाम को आपके आने से पहले मुझसे भी कह चुका था।

रघुवंश—एक पहर में ही यह सब हो गया। [नरेन्द्र की ओर देखकर] क्यों महाराज, गजराज का कहना सच हो सकता है? मैं तो समझता हूँ, झूठ बोल रहा है।

नरेन्द्र—दीवान साहब! झूठ बोलना तब होता है, जब आदमी अपने होश में रहकर अपने लाभ के विचार से कोई बात कहता है। इस समय यह झूठ तो नहीं बोल सकता। लेकिन यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह बिलकुल सच बोल रहा है। जो बात इसे मालूम है, अभी घड़ी-दो-घड़ी पहले जिस बात को यह सत्य समझता था, वही कह रहा है। [चम्पा की ओर संकेत कर] इनके जन्म के सम्बन्ध में जो बात यह जानता है, कह रहा है। [चम्पा वहीं पृथ्वी पर बैठकर घुटनों में अपना सिर दबा लेती है] रानी, दुःख न मानना। अगर यह बात सत्य भी है, तो इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं। अगर तुम्हें दुःख न हो तो मैं इससे और पूछूँ। देखूँ, क्या कहता है; धीरज धरो। सत्य अगर यही है तो इसका सामना करो।

शत्रुसूदन—स्वामीजी, पाँच वर्ष से इस स्त्री के साथ में नरक में पड़ा हूँ। लाख प्रयत्न किये, इसे प्रसन्न नहीं कर सका। सिंहिनी के सामने हाथी के बच्चे की जो हालत होती है, वही हालत इसके साथ मेरी रही है। आह नरक! घोर नरक!

रघुवंश—राजकुमार……

नरेन्द्र—राजकुमार! यह सृष्टि ईश्वर की है और इसका

आधार है दया और अनुकम्पा। और तुम तो जैसे सत्य के
फकीर बने हो। यह तो कहो, उस घोर नरक का स्वागत तुमने
स्वयं किया था या यह स्त्री तुम्हें उसमें खींच ले गई? स्वार्थबुद्धि
को छोड़कर न्याय से काम लेना। स्त्री रहते हुए तुमने इससे शादी
क्यों की? जो बात इसमें तब थी, वही अब भी है।

शत्रुसूदन—वह बात अब नहीं है। कुल और वंश की मर्यादा एक ओर, और व्यभिचार से पैदा हुई लड़की दूसरी ओर—

नरेन्द्र—विवाह के समय तुमने कुल और वंश की मर्यादा का खयाल नहीं किया था; नहीं तो क्या जिस लड़की की हल्दी दूसरे के साथ हो गई थी, उससे तुम शादी कर लेते? देखो, इस नब्बे वर्ष के बुड्ढे [रघुवंश को संकेत कर] की ओर देखो, इसकी दुनिया तुमने उजाड़ दी। इसके हृदय से पूछो, क्या कह रहा है? यह उसी पाप का प्रायश्चित्त है और अभी बहुत दिनों तक चलता रहेगा।

चम्पा—[उठकर] स्वामीजी, पूछिए गजराज से। मैं भी विचार करती हूँ, इसका कहना सच मालूम हो रहा है।

नरेन्द्र—[प्रसन्न होकर] ठीक, इस अभागे देश की स्त्रियों को साहस करना होगा। भगवती बनना होगा, नहीं तो उनकी यातना का अन्त नहीं। [गजराज के सिर पर हाथ रखकर] गजराज!

गजराज—[धीमे स्वर में] हाँ…

नरेन्द्र—चम्पा तुम्हारी लड़की है?

गजराज—हाँ…

नरेन्द्र—तुमने अब तक क्यों नहीं कहा?

गजराज—मारे लाज के—डर के।

नरेन्द्र—ठाकुर बिहारीसिंह को यह बात मालूम थी ?

गजराज—हाँ···

नरेन्द्र—तुम्हारे पास इस बात का कोई सबूत है ?

गजराज—हाँ···

नरेन्द्र—क्या है ?

गजराज—दुलहिनजी की एक चिट्ठी। चम्पा की शादी के बाद उन्होंने मुझे बुलाया था। लेकिन मैं लाज से नहीं गया। फिर उन्होंने मुझे समझाने के लिए वह चिट्ठी लिखी थी।

नरेन्द्र—तुम पढ़ना जानते हो ?

गजराज—थोड़ा-बहुत पढ़ लेता हूँ। उसी चिट्ठी को पढ़ने के लिए मैं सरकार से छः महीना हिन्दी पढ़ता रहा।

नरेन्द्र—तब फिर छः महीने के बाद तुमने पढ़ा ?

गजराज—तब कैसे पढ़ी।

नरेन्द्र—तब भी ठीक-ठीक नहीं पढ़ सका ?

गजराज—एक पड़ोसी से पढ़वाया था।

नरेन्द्र—[शत्रुसूदन की ओर देखकर] इसे अब होश में लाना चाहिए। नहीं तो इसके शरीर पर इसका बुरा असर पड़ेगा।

शत्रुसूदन—अभी नहीं। यह पूछिए, वह चिट्ठी कहाँ है !

नरेन्द्र—वह चिट्ठी कहाँ है गजराज !

गजराज—बाईं टेंट में, चुनवटी के भीतर।

[नरेन्द्र झुककर उसकी टेंट से चुनवटी निकाल लेता है। चुनवटी खोलकर लाल कपड़े में बँधी कागज की एक पुड़िया निकालता है। धीरे-धीरे पुड़िया खोलता है। अलफी में हाथ डालकर 'चोरबत्ती' निकालता है। बायें हाथ में चिट्ठी लेकर दाहें हाथ से बत्ती इधर-उधर कागज पर घुमाता है।]

नरेन्द्र—हाँ, मज़मून तो यही है।

चम्पा—[आगे बढ़कर चिट्ठी ले लेती है] मैं पढ़ूँगी [नरेन्द्र रोशनी दिखाता है, चम्पा मन ही मन चिट्ठी पढ़ जाती है] अम्मा का लिखा है। तो मैं गजराज की लड़की हूँ, वह भी अपने की!

गजराज दो-तीन बार ज़मीन पर हाथ पटकता है। नरेन्द्र तेज़ी से उसके पास जाकर अपने दोनों हाथ, उँगलियों को हिलाते हुए, पैर की ओर से सिर की ओर फेरता है। पाँच-सात बार हाथ घुमाने पर गजराज उठकर बैठ जाता है और चौंककर चारों ओर देखने लगता है

चम्पा—[गजराज का हाथ पकड़कर] मैं तुम्हारी लड़की हूँ ?

गजराज—[चौंककर] कौन कहता है ?

चम्पा—अभी तुमने कहा है ?

गजराज—झूठ है, झूठ है, मैं नहीं— मैं नहीं

चम्पा—[चिट्ठी दिखलाकर] और यह अम्मा की चिट्ठी है, जिसे तुम चुनवटी में रखे थे !

[गजराज घबड़ाकर चारों ओर देखता है। फिर हाथों में मुँह छिपा लेता है। पर्दा गिरता है]

तीसरा अंक

वही कमरा। कुर्सियाँ उसी तरह दीवार के किनारे एक सीध में रक्खी हैं। चारपाई भी, जो कमरे के बीच में थी, उसी तरह बिछी पड़ी है। लेकिन वह चारपाई जो उस दरवाज़े के पास थी, जिससे होकर भीतर और ऊपरी तह में जाने का रास्ता है, वहाँ से हटा दी गई है। सामने दीवार पर घड़ी में ग्यारह बज रहे हैं। केवल पाँच मिनट की देर है।

भीतरी दरवाजे से होकर नरेन्द्र का प्रवेश। वह सामनेवाली दीवार पर लगे हुए चित्रों को बारी-बारी देखने लगता है। वह वही रेशमी अलफी पहने है। लेकिन इस समय उसके गले में जूही की एक मोटी माला है, जिसे बायें हाथ से उठाकर वह कभी-कभी सूँघ रहा है और उसके सिर पर नीले रङ्ग की कामदार चादर साफे की तरह पड़ी है, जिसमें उसका बाँयाँ कान छिपा है और चादर का एक छोर बाँई ओर बगल से होकर पताके की तरह त्रिकोण बनाता हुआ नीचे को लटक रहा है। बिजली की रोशनी में उसका कामदार अंश हिलने के साथ ही चमक उठता है। वह एक चित्र के पास खड़ा होकर उसे ध्यान से देखने लगता है। दोनों हाथ उठाकर चित्र पकड़ता है। फिर उसे छोड़कर एक बार चारों ओर तेजी से दृष्टि दौड़ाकर कमरे में देखता है और वहाँ से हटकर घड़ी के ठीक नीचे आकर खड़ा होता है। वहीं दीवार से लगी हुई कुर्सी पर चढ़कर घड़ी खोलता है और उसकी बड़ी सुई ठीक बारह के अंक पर कर देता है! घड़ी बजने लगती है। नरेन्द्र वहीं कुर्सी पर खड़ा-खड़ा घड़ी की ओर देखता रहता है।

आप; सब बदल गये। कोई भी दर्द नहीं रहा। गजराज है कहाँ...?

रघुवंश—वहीं बैठा है। बहुत कहा... उठता ही नहीं।

नरेन्द्र—समुद्र में डूब गया था। यह तो उसका पुनर्जन्म है। उसकी बीमारी निकल गई।

रघुवंश—बीमार तो वह नहीं था।

नरेन्द्र—[मुस्कराकर] उसकी बीमारी तो राजरोग थी। और वह भी इस बात को जानता था कि उसकी कोई दवा नहीं है। भय और सन्देह, पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त की आग धीरे-धीरे सुलग रही थी उसका हृदय उसकी आत्मा की गङ्गा के किनारे श्मशान था। उसकी तो मुक्ति हो गई। अब तक तो वह भागता रहा। उसकी अपनी ही छाया उसके लिए भूत थी। अब वह साहस के साथ खड़ा होगा। पापी अपना पाप छिपाने में अनेक पाप करता है; और जब छिपाने का अवसर नहीं रहता, वह ऊपर देखता है—उसका बोझ हलका हो जाता है और वह नई यात्रा आरम्भ करता है।

[रघुवंश की ओर ध्यान से देखते हुए] समझ रहे हैं कि नहीं आप ! न्याय कचहरी में नहीं होता। मनुष्य की अदालत जिसे दण्ड देती है, उसे सदैव के लिए अपराधी बना देती है। न्याय तो वास्तव में होता है मनुष्य के हृदय में, और विचारक का काम करती है स्वतः उसकी आत्मा। दुनिया की अदालतें तो केवल अपराधी बनाने के लिए बनी हैं। गजराज का न्याय उसकी आत्मा ने कर दिया। वह अब निर्दोष है।

रघुवंश—निर्दोष ! स्वामीजी !

नरेन्द्र—[उठकर बैठते हुए] जी हाँ—उसका प्रायश्चित्त भी हो गया।

रघुवंश—प्रायश्चित्त कब किया ?

नरेन्द्र—चौबीस वर्ष तक बराबर। कोई पता न पावे। भय, आशंका, सन्देह। सब किसी से डरना—किसी के सामने सिर न उठाना। यह [सिर हिलाकर] साधारण प्रायश्चित्त है ? इस प्रायश्चित्त का यज्ञ आज समाप्त भी हो गया। उसका पाप उसका न होकर आज सारे जगत् का हो गया।

रघुवंश—मुझे तो उसपर दया आ रही है।

नरेन्द्र—हर किसी को, जिसके पास मनुष्य का हृदय होगा, उसपर दया आयेगी।

रघुवंश—[उठकर] मैं तो जा रहा हूँ फिर समझाने। उसे दुनिया छोड़ दे, लेकिन मैं तो नहीं छोड़ सकता। बुराई से तो कोई नहीं बचा—अकेले भगवान् को छोड़कर।

[रघुवंश का प्रस्थान। नरेन्द्र उठकर जिस चित्र को देर तक देखता रहा है, वहाँ जाकर फिर खड़ा होता है और उसे फिर ध्यान से देखने लगता है। अपने गले की माला निकालकर, जिस पीतल की कील में चित्र लगा है, उसी पर डाल देता है। माला चित्र के शीशे पर फैल जाती है। नरेन्द्र लौटकर चारपाई पर लेट रहता है तथा माला और चित्र की ओर देखने लगता है।

भीतरवाले दरवाजे से चम्पा और उसके पीछे शत्रुसूदन का प्रवेश।]

चम्पा—[नरेन्द्र की ओर देखकर] तो मुझे सचमुच आत्म-हत्या करनी पड़ेगी ?

नरेन्द्र—[शत्रुसूदन की ओर देखते हुए] राजकुमार!

शत्रुसूदन—[सहमकर] देखिए, यही इसकी मनोवृत्ति है।

चम्पा—[गम्भीर होकर] मुझे—आत्महत्या तो करनी पड़ेगी।

नरेन्द्र—[मुस्कुराकर] लेकिन किसलिए ?

चम्पा—इस जीवन का अन्त करने के लिए—जिसके साथ

लांछन, अपमान, अवहेलना और···

नरेन्द्र—और क्या ?

चम्पा—जो अपराध मेरा नहीं है, उसे मेरे सिर मढ़ना।

नरेन्द्र—[शत्रुसूदन की ओर देखते हुए] राजकुमार···

शत्रुसूदन—[सिर नीचे कर] जी···

नरेन्द्र—तुम···

शत्रुसूदन—इसके भीतर इसकी माता का रक्त है।

नरेन्द्र—[धीमे स्वर में] किसी—डाक्टर से आपरेशन करा कर निकलवा दो। बस, इतने ही में समस्या सुलझ जाती है।

शत्रुसूदन—[जैसे बहुत साहस कर] यह हँसी का अवसर नहीं है।

नरेन्द्र—[चौंककर उठते हुए] क्या बात ? कहीं ज्वालामुखी तो नहीं भड़क पड़ा, या भूडोल आ गया है जिससे इस मकान के गिरने का सन्देह है ! मुझे तो हँसी करना ही है राजकुमार तुम्हारी मूर्खता पर। इतनी बात तो तुम जानते ही होगे कि तुम्हारा दबाव मुझपर नहीं है। रही इस स्त्री की बात, तुमने इससे शादी की है। तुम, गजराज और यह, तुम तीनों एक ही नाव में बैठे हो। बुद्धि से काम लो। नाव के साथ तुम भी डूब जाओगे, तुम्हारी बुद्धिमानी इसी में है कि नाव न डूबने पाये। और चम्पा, तुम भी अपना स्वभाव बदल दो। राजकुमार तुम्हारे स्वामी हैं, तुम्हें अपने व्यक्तित्व को इनके भीतर मिला देना चाहिए। तुम्हारी पृथक् सत्ता मिट जानी चाहिए।

शत्रुसूदन—स्वामीजी···

नरेन्द्र—हाँ।

शत्रुसूदन—चम्पा ने मेरे हृदय को बार-बार···

नरेन्द्र—हाँ कहो······

[शत्रुसूदन एकाएक चुप होकर नीचे धरती की ओर देखने लगता है। चम्पा और नरेन्द्र की चार आँखें होती हैं।]

नरेन्द्र—राजकुमार ! चम्पा और गजराज की परीक्षा हो चुकी, अब तो तुम्हारी...

शत्रुसूदन—लेकिन मेरी परीक्षा की जरूरत क्या है ? और न मैं इसके लिए तैयार हूँ।

नरेन्द्र—हूँ, तो तुम कायर हो [शत्रुसूदन की ओर देखकर] कायर...कायर...

शत्रुसूदन—ऐसी वीरता तो सिद्धान्त और संस्कार के प्रतिकूल है।

नरेन्द्र—कैसी वीरता ?

शत्रुसूदन—वही जिसे आप आदर्श समझते हैं।

नरेन्द्र—मैं जिसे आदर्श समझता हूँ, वह तुम्हारे घड़ी-दो-घड़ी का विनोद, दिलबहलाव नहीं, जिसे तुम नहीं देखते—जिसकी ओर से तुम्हारी आँखें बन्द हैं, जिसके लिए तुम अंधे हो, लेकिन जो तुम्हारा आधार है।

शत्रुसूदन—मेरा आधार है—मेरा व्यक्तिगत संस्कार और मेरे वंश की मर्यादा।

नरेन्द्र—हर्गिज नहीं। तुम्हारा आधार है तुम्हारी मनुष्यता। तुम्हारी आत्मा भूखी है, उसे भोजन दो। घड़ी-भर के लिए अपनी आत्मा को चम्पा के शरीर में आने दो, और चम्पा की आत्मा को अपने शरीर में जाने दो; और देखो व्यक्तिगत संस्कार और वंश की मर्यादा कहाँ रहती है।

शत्रुसूदन—लेकिन किस लिए ?

नरेन्द्र—अपनी मनुष्यता को जगाने के लिए, अपनी आत्मा को नीरोग और स्वस्थ बनाने के लिए। अगर अब भी न समझे

तो मैं समझूँगा कि तुम्हारा संस्कार नाखून और सिगरेट का है; कुत्तों, घोड़ों और चूहों का है। संस्कार का अर्थ है दानव का शासन और देवता की पूजा। दानव के शृङ्गार को तुमने अपना संस्कार बना लिया है।

शत्रुसूदन—स्वामीजी ''मैं योगी नहीं।

नरेन्द्र—लेकिन योगी मनुष्यता का लांछन नहीं है। तुम योगी नहीं हो, इसीलिए इतने दुखी हो। [उसकी ओर ध्यान से देखने लगता है]

शत्रुसूदन—[नीचे देखते हुए] मैंने इसलिए नहीं कहा कि आप रुष्ट हो जायँ।

नरेन्द्र—देखो इधर'''

शत्रुसूदन—[नीचे की ओर देखते हुए] कहिए !

नरेन्द्र—इधर देखो भी'''

शत्रुसूदन—मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि अपनी सिद्धियों का प्रयोग आप मुझपर न करें।

नरेन्द्र—[कुछ सोचते हुए] राजकुमार, मैं तो चाहता था कि तुम भी साधक बन जाते

शत्रुसूदन—और रतनपुर''' ?

नरेन्द्र—क्या मतलब ?

शत्रुसूदन—यही कि रियासत का काम कौन करता ?

नरेन्द्र—रियासत का काम भी तुम कुछ कर लेते हो ? मैं तो नहीं समझता'''।

शत्रुसूदन—जरूर करता हूँ, अन्यथा शासन चल कैसे रहा है ?

नरेन्द्र—हूँ—अच्छा, माना। यह तो कहो, रियासत में बाढ़ और दुर्भिक्ष से कितने आदमी इस वर्ष मरे हैं ? पिछले

बारह महीनों में कितनी हत्याएँ और कितनी चोरियाँ हुई हैं ?

शत्रुसूदन—आफ़िस से पूछकर बतला सकूँगा।

नरेन्द्र—तब शासन आफ़िस के भरोसे चल रहा है। तुम्हारा हाथ तब माना जाता कि तुम प्रजा की जिन्दगी के उत्तरदायी रहते, कम-से-कम तुम्हें इस बात का तो पूरा पता होता कि बाढ़ और दुर्भिक्ष से तुम्हारी कितनी प्रजा मरी और कितनी हत्याएँ हुईं ? लेकिन तुमने तो अपने दीवान को इस बात पर निकाल दिया कि पुश्तैनी नौकरी तुम्हें सिद्धान्त के प्रतिकूल जँचती है। साठ वर्षों तक जिसने रियासत के प्रबन्ध में अपना व्यक्तित्व मिटा डाला—वह आज तुम्हारे लिए अयोग्य हो गया !

शत्रुसूदन—देखते नहीं हैं, वह कितने वृद्ध हो गये हैं ?

नरेन्द्र—बस वृद्ध होना ही उनकी अयोग्यता हो गई या कहीं कर्त्तृत्व-शक्ति में भी उन्होंने कमज़ोरी दिखलाई है ? राजा होने का अधिकार उसे है जिसके मन में प्रजा का भाव हो, जो प्रजा के लिए कुछ कर सके; और इस कसौटी पर दीवान रघुवरसिंह को राजा होना चाहिए—न कि तुम्हें। तर्क मत करो, प्रतिवाद मत करो; अपनी आत्मा से पूछो—मैं सच कह रहा हूँ या झूठ। तुम्हारे भीतर जो ईश्वर है, जो देवता है—उससे पूछो।

चम्पा दीवार की ओर देखती है। चित्र के ऊपर माला देखकर तेज़ी से बढ़ती है और वहीं दीवार के पास रखी हुई कुर्सी पर चढ़ कर माला उतार कर पहन लेती है। शत्रुसूदन उसकी ओर क्रोध से देखता है। नरेन्द्र का बाहरी दरवाज़े से प्रस्थान]

शत्रुसूदन—माला पहनने की तबीअत चल गई !

चम्पा—मेरी तसवीर पर पड़ी थी।

शत्रुसूदन—यह तो मैंने देखा, और इन स्वामीजी ने रक्खा था।

चम्पा—किसने रक्खा, यह तो मैं नहीं जानती। फूल की माला है, जूही के फूल इस गर्मी में कितने अलभ्य हैं! (शत्रुसूदन के पास जाकर माला निकाल कर हाथों में लेती हुई) तुम्हें पहना दूँ?

शत्रुसूदन—मुझे? लेकिन तुम्हारी माला अब मेरे योग्य नहीं है। तुम इस लायक़ नहीं। पीछे हटो। कहे देता हूँ, मेरा शरीर न छूना!

चम्पा—यह ज्ञान उसी दिन क्यों नहीं हुआ?

शत्रुसूदन—किस दिन?

चम्पा—जिस दिन मुझसे विवाह किया। तब मैं पवित्र थी और आज अपवित्र हो गई हूँ?

शत्रुसूदन—बहस मत करो। मैं तुम्हें ठाकुर विहारीसिंह की लड़की समझता था—मुझे क्या मालूम था कि तुम्हारा रक्त अशुद्ध है। वह मेरे योग्य—मेरी वंश-मर्यादा के योग्य नहीं।

चम्पा—[माला को अपनी दाईं कलाई में कंकण की तरह लपेटकर] लेकिन मैं फिर पूछती हूँ, इसमें मेरा क्या अपराध है?

शत्रुसूदन—माला के साथ खिलवाड़ कर लो; अपना शृङ्गार पूरा कर लो, तब पूछो।

चम्पा—[अपने सिर पर हाथ रखकर] मेरा शृङ्गार यह···यह सिंदूर है, और यह तुम्हारा है। तुम्हारे पास इतना साहस तो है नहीं कि मुझे छोड़ दो। मुझे स्वतन्त्र कर दो। बड़ी रानी से असन्तुष्ट होकर मुझे पकड़ लाये और अब किसी और को

पकड़ लाओगे। एक की जगह दो रानियाँ हुईं, अब तीन होंगी!

शत्रुसूदन—लेकिन तब यह दम्भ नहीं रह जायेगा।

चम्पा—[मुस्कुराकर] मैंने दम्भ तो कभी नहीं किया।

शत्रुसूदन—कभी नहीं ?

चम्पा—कभी नही। पाँच वर्ष बीत गये। कभी आपके पहले न भोजन किया, न शयन किया। आपसे कभी न तो किसी तरह का आग्रह किया और न कोई उपालम्भ। आशा भी जब हुई, जो हुई, जैसी हुई [एकाएक चुप हो जाती है]

शत्रुसूदन—हाँ, कहो।

चम्पा—[कंठ पर हाथ रखकर] शब्द यहाँ आकर रुक जाते हैं, बाहर निकलना नहीं चाहते।

[वहीं फर्श पर बैठकर एकटक शत्रुसूदन की ओर देखने लगती है।]

शत्रुसूदन—[अवहेलना के स्वर में] तुम्हारे नेत्र मेरे पैरों की ओर रहे ···हाँ ·· सही ··· है··· लेकिन तुम्हारा हृदय ·· [अँगड़ाई लेता है]

चम्पा—[उसी तरह बैठी हुई] उसमें भी मेरा दोष नहीं। मैं कोशिश तो करती रही। अपनी ओर से मैंने कुछ उठा नहीं रखा।

शत्रुसूदन—[रूखे स्वर में] झूठ बोल रही है।

चम्पा—शायद···

शत्रुसूदन—शायद नहीं, सच। झूठ बोल···

चम्पा—अब बहुत हुआ···

शत्रुसूदन—बहुत हुआ ! तेरे हाथ जल पीना भी···

चम्पा—क्यों नहीं ? होटलों की मिस लोगों से भी मेरा···

शत्रुसूदन—(डाँटकर] चुप रहो। वेश्या……

चम्पा—(उठकर बाहर जाती हुई) किस अपराध…

शत्रुसूदन—कहाँ चली ?

चम्पा—बाहर…

शत्रुसूदन—किस लिए ?

चम्पा—गजराज से पूछने…देखूँ !

शत्रुसूदन—क्या पूछने ?

चम्पा—अपना निर्वाह ! कैसे होगा ? किस तरह होगा ?

शत्रुसूदन—इसका मतलब ?

चम्पा—मैं इस नरक में तो नहीं रह सकती।

शत्रुसूदन—लेकिन गजराज कब का लखपती है ?

चम्पा—[उद्वेग के स्वर में सिर हिलाती हुई] लखपती नहीं……भिखारी सही। स्त्री के लिए दो ही जगहें हैं, पिता का घर या पति का घर……तीसरा घर न तो कहीं है, न बनाया जा सकता है; इसके लिए साहस करना तो पाप और भ्रष्टाचार है। पुरुष कहीं भी रहे—आकाश, पाताल, मर्त्य-लोक—उसके लिए सभी रास्ते खुले हैं।

शत्रुसूदन—बन्द कर दो………

चम्पा—बन्द क्या कर दूँ ? मैं भी चल पड़ूँ उन्हीं रास्तों से…मैं क्यों रुकूँ ?

शत्रुसूदन—तुम्हें रोकता कौन है ?

चम्पा—तुम—तुम्हारी मर्यादा !

शत्रुसूदन—बिलकुल नहीं।

चम्पा—[उसकी ओर देखकर] सच कह रहे हो ?

शत्रुसूदन—कोई दिन था चम्पा, जब मैं तुम्हें अपने हृदय में रख लेना चाहता था !

चम्पा—लेकिन आज मैंने कौन-सा अपराध किया?

शत्रुसूदन—पाँच वर्षों के भीतर तुमने कभी भी मुझे प्रेम से…

चम्पा—मैंने सदैव श्रद्धा और सम्मान के साथ आत्म-समर्पण किया था!

शत्रुसूदन—श्रद्धा और सम्मान के साथ; लेकिन प्रेम के साथ नहीं।

चम्पा—मैं अपने को निर्दोष तो नहीं कह रही हूँ, लेकिन उसमें भी मेरा अपराध नहीं है। विवाह होने के पहले ही मेरा जीवन बिगड़ चुका था। यह अपराध मेरा नहीं—उन लोगों का था, जिन्होंने मुझे पढ़ने के लिए कालेज में भेजा दिया—बाल-विवाह की कुरीतियों को मिटाने के लिए जिन्होंने आदर्श की वेदी पर मेरा बलिदान कर दिया। पढ़ाई के दिनों में ही [छाती पर हाथ रखकर] हृदय उलझ गया। स्त्री के जीवन में सोलह वर्ष की अवस्था से लेकर बीस वर्ष तक—यह चार वर्षों का काल…तो सपने का होता है; कल्पना का इन्द्रधनुष सहस्र रंगों में रँग उठता था। उन्हीं दिनों प्रलय की वह सुन्दर घड़ी आई।—(एकाएक चुप हो जाती है)

शत्रुसूदन—[गंभीर होकर] हाँ…तब?

चम्पा—[उसकी ओर देखकर और दोनों हाथों की उँगलियाँ बालों में छिपाकर] तब…तब…तब मैं उनसे प्रेम करने लगी। यह सब कैसे हुआ, क्यों हुआ, मैं समझ न सकी। उनके साथ नित्य सिनेमा देखने जाया करती थी। रोशनी बुझ जाने पर पहले दर्जे में प्रायः केवल हम दोनों बैठे रहते थे। सिनेमा के दृश्यों से रोमांच हो जाता था, नसों में बिजली दौड़ जाती थी, मुझे होश नहीं रहता था इतना मैं कह सकती हूँ, वह पूरे संयम

के साथ...और इसी कारण पश्चात्ताप के लिए कोई विशेष परिस्थिति नहीं पैदा हो सकी।

शत्रुसूदन—सचमुच ?

चम्पा—हाँ, लेकिन इसका श्रेय उनको है......मुझे नहीं।

शत्रुसूदन—[गंभीर होकर कुछ सोचने लगता है] लेकिन तुम्हें तो ऊँची शिक्षा मिली थी। तुमने इस बात को व्यक्त क्यों नहीं किया ?

चम्पा—यह पुरुष से हो सकता है ; लेकिन स्त्री से नहीं। पुरुष के लिए तो यह पौरुष हो उठता है; लेकिन स्त्री का तो यह चिरन्तन पाप है। यह तो मेरा पाप था न ! इसीलिए मेरे जीवन ने उसके लिए आशा नहीं दी। मैंने एक पत्र आपको लिखा, टिकट भी लगा दिया; लेकिन डाकखाने में छोड़ नहीं सकी।

शत्रुसूदन—किस लिए ?

चम्पा—यही बतलाने के लिए कि मैं आपके योग्य नहीं थी।

शत्रुसूदन—हूँ—तब ? [चम्पा उसकी ओर चुपचाप एकटक देखने लगती है] लेकिन अब तो ?

चम्पा—बौद्धिक विकास के लिए यह युग प्रसिद्ध है। विश्वविद्यालय में व्यक्ति की स्वतन्त्रता और व्यक्ति के आचरण पर जोर दिया जाता है।

शत्रुसूदन—आदर्श सदैव जीवन के प्रतिकूल है।

चम्पा—मैं आपके सम्मान और मर्यादा की रक्षा करना चाहती हूँ।

शत्रुसूदन—लेकिन अब तो यह हो नहीं सकता। तुम्हारे

जन्म की कथा जानकर मैं तुम्हें स्त्री-रूप में तो रख नहीं सकता। आज दो-चार जानते हैं, कल दुनिया जान जायगी।

चम्पा—स्त्री-रूप में न सही।

शत्रुसूदन—तब किस रूप में?

चम्पा—क्यों, राजमहल में कई दासियाँ हैं।

शत्रुसूदन—वाह! स्त्री नहीं तो दासी। लेकिन लोग यह समझेंगे कैसे? भगवान् रामचन्द्र को सीता का निर्वासन करना पड़ा था। लोकमत ऐसी चीज़ है।

चम्पा—मैं तो किसी रावण के साथ नहीं रही।

शत्रुसूदन—क्यों नरेन्द्र!

[नरेन्द्र का सहसा प्रवेश]

नरेन्द्र—तो इस बेचारी का त्याग इसलिए नहीं होगा कि यह गजराज की बेटी है और वह भी प्रणाली-हीन, बल्कि इसलिए कि यह नरेन्द्र के साथ थी।

शत्रुसूदन—स्वामीजी, चाहिए तो नहीं; लेकिन बाध्य होकर मुझे कहना पड़ रहा है कि आप सीमा का अतिक्रमण कर रहे हैं।

नरेन्द्र—[अलफ़ी उठाकर] इसीलिए तो इस वेश में, इस जीवन में, हूँ। मुझे भी कभी कोट-कमीज, शेरवानी-पाजामा का शौक़ था। [चम्पा की ओर देखता है, चम्पा धरती की ओर देखने लगती है]

शत्रुसूदन—कोट-कमीज, शेरवानी-पाजामे का क्या मतलब?

नरेन्द्र—तुम्हारी सीमा! तुमने राजयोगी को इतना बड़ा उपालम्भ...[कई बार सिर हिलाकर] तुम्हारे पास इतनी समझ भी नहीं है कि अगर मुझे सीमा के भीतर ही रहना होता, तो

शत्रुसूदन—वह कैसे ?

नरेन्द्र—इसके पिछले धब्बे धो दिये जायँ; पिछली जंजीरें काटकर फेंक दी जायँ। यह अपने मन में मान लिया जाय कि हम लोगों का जन्म आज हो रहा है, हम पहले नहीं थे; जो कुछ था, हमारा भूत था; इस धरती पर हम आज उतरे हैं और आज ही से हम लोगों को अपनी यात्रा प्रारम्भ करनी है। इस तरह केवल गजराज और चम्पा के साथ ही नहीं, बल्कि बूढ़े दीवान और नरेन्द्र से भी तुम्हारा समझौता हो जायगा और इस प्रकार तुम राजपद के लिए उपयुक्त होगे।

चम्पा—दुनिया ऊपर उठे या न उठे; लेकिन स्वर्ग तो नीचे आ रहा है।

शत्रुसूदन—[हँसते हुए] तुम…[उसकी ओर देखने लगता है]

चम्पा—लेकिन, अगर मैंने झूठ कहा हो तो उपनिषद्-काल के ऋषियों की तरह मेरा सिर कन्धे से उतर जाय। [सिर हिलाकर] अभी गिरा तो नहीं।

नरेन्द्र—तो तुम तैयार हो नये प्रारम्भ के लिए ?

शत्रुसूदन—अच्छा तो होता, लेकिन…

चम्पा—लेकिन,…स्वर्ग के रास्ते की सबसे बड़ी खाई…

नरेन्द्र—[कुछ सोचकर] देखो…लेकिन तो भ्रम के साथ-ही साथ विश्वास भी मिटा देता है, और जिस बुद्धि का दावा करता है, उसके साथ भी दूरी तक नहीं जा सकता।

चम्पा—बुद्धि का काम तो अब तक केवल सो जाना था—इसने चलना कब से प्रारम्भ कर दिया ?

नरेन्द्र—[चम्पा की ओर देखकर] तो तुम अब दार्शनिकता

छोड़कर विनोद की ओर बढ़ रही हो! क्यों, ठीक न! परिर्त्तन तो उपयोगी है।

चम्पा—मुझे इन दोनों चीज़ों में विशेष अन्तर नहीं देख पड़ता। [शत्रुसूदन की ओर संकेत कर] जब सरकार की सुन्दर कृपा थी, पवित्रता और मर्यादा की कसौटी पर जब मैं चमक उठती थी—तब तो मुझे दार्शनिकता सूझती थी; और आज जब सब जगह से गिर पड़ी हूँ, मुझे विनोद···

नरेन्द्र—सब जगह से कैसे गिर पड़ी हो!

चम्पा—सब जगह से गिर पड़ी हूँ स्वामीजी, इसीलिए हँसना चाहती हूँ; और अब हँसूँगी अपने दंभ पर और संसार की समस्या पर। मेरा हृदय चीर दिया गया···जीवन की छुरी उसके आरपार हो गई। रक्त निष्फल न जाय, इसलिए मैं उसे पिचकारी में खींचकर शून्य के साथ होली खेलने जा रही हूँ। [माला अपने सिर पर रखती है, जो सामने की ओर भौंह से सटी हुई पीछे की ओर लटक रही है]

नरेन्द्र—[उसकी ओर ध्यान से देखते हुए] तुम्हारा मतलब क्या है चम्पा?

चम्पा—मैं तो हँसना चाहती हूँ!

शत्रुसूदन—मैं तुम्हें मना नहीं करता। स्वामीजी, है संभव नया प्रारंभ?

चम्पा—प्रारंभ नया हो या पुराना, स्त्री सदैव पुरुष का नाश करती रहेगी और पुरुष स्त्री का। यह विरोध चिरन्तन है—

सुनु मुनि कह पुरान स्रुति संता।
मोह बिपिन कर नारि बसन्ता॥

अगर किसी स्त्री को लिखना होता तो वह ठीक इसका उलटा लिखती। स्त्री का मोह पुरुष है और पुरुष का स्त्री।

नरेन्द्र—लेकिन तुम्हारे यह सब कहने का मतलब ? हाँ, कहो।

चम्पा—यही कि आपके साथ, दीवान साहब के साथ और गजराज के साथ भी नया प्रारम्भ...नया समझौता...हो सकता है; लेकिन मेरे साथ...मेरे साथ न तो कोई नया प्रारम्भ हो सकता है और न नया समझौता !

नरेन्द्र—क्यों ?

चम्पा—इसीलिए कि मैं स्त्री हूँ, स्वामीजी !

नरेन्द्र—अच्छा तब !

चम्पा—किया है कभी किसी स्त्री ने भी समझौता ? हर-एक समझौते का उद्देश्य होता है...स्वार्थ और रक्षा......स्त्री का कोई स्वार्थ तो होता नहीं; और जब से यह सृष्टि है, स्त्री की रक्षा भी कभी नहीं हुई। जब तक जूता नया रहता है, चमक निकलती रहती है; तबीअत चाहती है, उसी को देखा करें। दिन में दो-चार बार साफ़ करने की ज़रूरत रहती है, लेकिन बस दो महीना-दो-महीना......उसके बाद कुछ दिन और पैरों से इधर-उधर कर पहन लेना और उसके बाद...यही हालत स्त्री की है। जब तक वह आँखों में चकाचौंध और धमनियों में बिजली पैदा कर सकती है, वह पहेली है, समस्या है, फूल है, स्वप्न है, अनन्त प्रेम और अनन्त सुख है; लेकिन जब ज्वार उतार पर होता है, जब चन्द्रमा की क्षीण कला अमावस्या की ओर बढ़ती है, जब आनन्द लुप्त होने लगता है—उसका अस्थिपञ्जर...अपमान और अवहेलना...इसी तरह एक दिन उसकी कथा समाप्त हो जाती है। वह कहाँ थी ? इसका पता भी पीछे नहीं चलता;

क्योंकि उसकी कोई अपनी जगह तो होती नहीं, जो सूनी देख पड़े।

शत्रुसूदन—सुनिएगा और व्याख्यान! कह सकेंगे आप कि किसी स्त्री के मुख से इससे अधिक विष निकल सकेगा?

नरेन्द्र—[मुस्कराकर] लेकिन इसे विष ही क्यों मान लिया जाय? विचार—विष हो सकता है और अमृत भी।

शत्रुसूदन—अच्छा, तो यह अमृत है?

नरेन्द्र—मैं तो समझता हूँ, यहाँ विष और अमृत दोनों मिल गये हैं। यहीं से नया प्रारम्भ होना चाहिए। समझौते की नींव पड़ गई!

शत्रुसूदन—तो आप व्यंग कर रहे हैं?

नरेन्द्र—चम्पा ने भी तो व्यंग ही किया था। अब तुम व्यंग कर दो। समझौता हुआ ही है।

[गजराज का प्रवेश। गजराज की आकृति गंभीर और कठोर हो रही है। वह आगे बढ़कर नरेन्द्र का पैर छूकर प्रणाम करता है और फिर लौट पड़ता है।]

नरेन्द्र—कहाँ जा रहे हो जी?

गजराज—[घूमकर] दीवान रघुवंशसिंह के साथ जा रहा हूँ। हम लोग साथ ही रहेंगे। [लौटकर फिर आगे बढ़ता है। चम्पा उसकी ओर देखने लगती है]

नरेन्द्र—सुनो तो, इतनी जल्दी क्यों कर रहे हो?

गजराज—देर हो रही है। पार जाने के लिए नाव नहीं मिलेगी। वह सड़क के आगे निकल गये हैं।

नरेन्द्र—कौन, दीवान साहब?

गजराज—हाँ·····]

नरेन्द्र—[शत्रुसूदन से] सचमुच बुड्ढे को छोड़ रहे हो जी ?

शत्रुसूदन—मैंने तो उनको नहीं छोड़ा। वह स्वयं·········[गजराज से] कहाँ तक गये होंगे जी ?

गजराज—पुल तक गये होंगे

शत्रुसूदन—अभी ठहरो। मैं उन्हें लिवा लाऊँ; शायद··· [प्रस्थान]

नरेन्द्र—गजराज, क्या होगा !

गजराज—होगा क्या स्वामीजी! जैसे दुनिया चलती रही है, चलेगी। [प्रस्थान]

[नरेन्द्र चारपाई पर लेटकर आँखे बंद कर लेता है। चम्पा कमरे में इधर उधर टहलने लगती है। चारपाई के पास खड़ी होकर नरेन्द्र की ओर देखने लगती है।]

चम्पा—नींद आ रही है ?

नरेन्द्र—नहीं तो !

चम्पा—आँखें बन्द हैं !

नरेन्द्र—हाँ ·····

चम्पा—आप चाहते क्या हैं, इसका ध्यान रखिए। रोज़-रोज़ का झंझट मिट जाना चाहिए।

नरेन्द्र—जब तक जिन्दगी है, झंझट नहीं मिट सकता। [चम्पा की ओर देखने लगता है]

चम्पा—इसका मतलब कि नरक से छुट्टी नहीं मिलेगी ?

नरेन्द्र—नरक तो तुम्हारे हृदय में है। उसे निकाल दो।

अगर तुमने उससे प्रेम किया भी था, तो कोई बात नहीं···तुम्हें राजकुमार के सामने आत्मसमर्पण करना होगा।

चम्पा—इसलिए कि मैं स्त्री हूँ।

नरेन्द्र—हाँ, इसीलिए। स्त्री सदैव पुरुष की आश्रित रहेगी।

चम्पा—लेकिन यही तो मैं नहीं चाहती। मैं अकेले रहूँगी!

नरेन्द्र—कहाँ···

चम्पा—धरती में, आकाश में, पाताल में, जहाँ चाहूँगी वहाँ।

नरेन्द्र—लेकिन इस तरह तुम अपनी रक्षा नहीं कर सकोगी।

चम्पा—लेकिन मेरे पास अब है ही क्या जिसकी कि रक्षा करनी पड़ेगी?

नरेन्द्र—तुम्हारे पास अब कुछ नहीं है?

चम्पा—कुछ नहीं, मैं मर चुकी। पाँच वर्ष पहले ही मर चुकी!

नरेन्द्र—[चारपाई पर बैठते हुए] तुम मर चुकीं पाँच वर्ष पहले!

चम्पा—जी हाँ। आप जब सब कुछ जान गये। मैं अब भी अपना पहला प्रेम नहीं छोड़ सकी।

नरेन्द्र—लेकिन तुम्हारे उस प्रेमी को तुम्हारी चिन्ता नहीं है।

चम्पा—यह कैसे कहा जा सकता है?

नरेन्द्र—इसलिए कि वह तुम्हारे सामने है, तुम उसे देखती नहीं। तुम्हारी शिक्षा ने तुम्हारे मन में एक प्रकार का दुराग्रह, दुस्साहस, पैदा कर दिया है। शत्रुसूदन ने तुम्हारे साथ शादी कर ग़लती की थी, तुम उसी का बदला लेना चाहती हो। लेकिन

होने से काम नहीं चल सकता। देवता बनो···देवता। इसे उठा लो। इसकी सन्तप्त आत्मा को शान्ति दो, यही तुम्हारा काम है। तुम राजा हो और राजा का यही धर्म है।

[शत्रुसूदन आगे बढ़ता है। चम्पा को पकड़कर उठा लेता है। चम्पा अपने अंगों को शिथिल कर देती है, उसका सिर झुककर शत्रुसूदन के कन्धे पर आ जाता है। शत्रुसूदन अपना दायाँ हाथ उसके ललाट पर रखता है, जिसके भीतर उसकी आँखें छिप जाती हैं।]

नरेन्द्र—आज से मैं तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहा राजकुमार! मेरा राजयोग आज समाप्त हो गया। आज मैं फिर वही नरेन्द्र हूँ··

शत्रुसूदन—[चौंककर] अयँ! तो यहाँ भी मेरी पराजय···

नरेन्द्र—[चम्पा सीधी खड़ी हो जाती है।]

नरेन्द्र—[मुस्कराते हुए] जी···[शत्रुसूदन बढ़कर उसका हाथ पकड़ लेता है] हाँ; कहिए।

शत्रुसूदन—हाँ, मैं हार गया। अच्छा, अब मुझे क्षमा कर दो। तुम्हारा राजयोग सफल हुआ। बोलो, मुझे क्षमा करते हो या नहीं?

नरेन्द्र—क्षमा···राजकुमार, एक बार नहीं, हजार बार तुम्हें क्षमा कर आज मैं फिर नरेन्द्र होता हूँ।

[रघुवंशसिंह का प्रवेश, उनके पीछे गजराज है।]

रघुवंश—नरेन्द्र!

नरेन्द्र—जी हाँ···मैं ही।

[रघुवंश शत्रुसूदन की ओर देखते हैं।]

शत्रुसूदन—मेरी भूल थी दीवान साहब! आपकी गद्दी पुश्तैनी है।

नरेन्द्र—लेकिन मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता। मैं तो···

यहाँ राजयोग की समाप्ति···अब कर्मयोगी बनूँगा, और उसके बाद फिर ज्ञानयोग। [रघुवंशसिंह की ओर देखकर] बाबूजी, मैं अब अपने को बाँध नहीं सकता। आप समझते हैं, मुझे इससे दुःख है; लेकिन यह भ्रम है। मेरे सुख का···मेरे योग का···आज नया आरम्भ है।

शत्रुसूदन—तब तो तुमने मुझे क्षमा नहीं किया!

नरेन्द्र—यह कैसे?

शत्रुसूदन—मेरे यहाँ रहना नहीं चाहते।

नरेन्द्र—इसलिए कि मेरा जीवन केवल तुम्हारे लिए नहीं, सारे संसार के लिए है।

[गजराज का प्रवेश]

संसार मुझे अपनी ओर बुला रहा है और मैं अब जा रहा हूँ। [गजराज] तुमने क्या तय किया जी?

गजराज—हाँ···मैं तो···[कमरे में चारों ओर देखता है]

नरेन्द्र—[उसका हाथ पकड़कर] बाबूजी, राजकुमार और चम्पा तो यहीं रहेंगे। इन लोगों की सुलह हो गई और तुम··

गजराज—मैं तो यहाँ नहीं रह सकता। अब नौकरी नहीं··· [एक बार चम्पा की ओर देखकर शत्रुसूदन की ओर देखता है।]

नरेन्द्र—अच्छा हो, तुम भी मेरे साथ चलो। बाबूजी, आप किस दुःख में पड़ गये? राजकुमार आपका ख्याल करेंगे। राजकुमार! हो सकेगा या नहीं?

शत्रुसूदन—दीवान साहब···पिता की तरह···।

नरेन्द्र—अब अधिक नहीं। मैं निश्चिन्त हूँ। चलो जी··· नहीं ठहरो [अलफी, कामदार चादर, कटार और पान के डिब्बे,

एक-एक कर चारपाई पर रखता है। जूता वहीं फर्श पर निकाल देता है।] इन चीजों की अब क्या जरूरत। राजयोग की चीजें राजा के साथ। कर्मयोग में तो दो गज के दो वस्त्र... इतने ही में काम चलता रहेगा !

[रघुवंश वहीं फर्श पर बैठ जाते हैं]

[शत्रुसूदन, चम्पा, रघुवंशसिंह सब देखते ही रह जाते हैं। गजराज के साथ नरेन्द्र बँगले के बाहर चला जाता है]